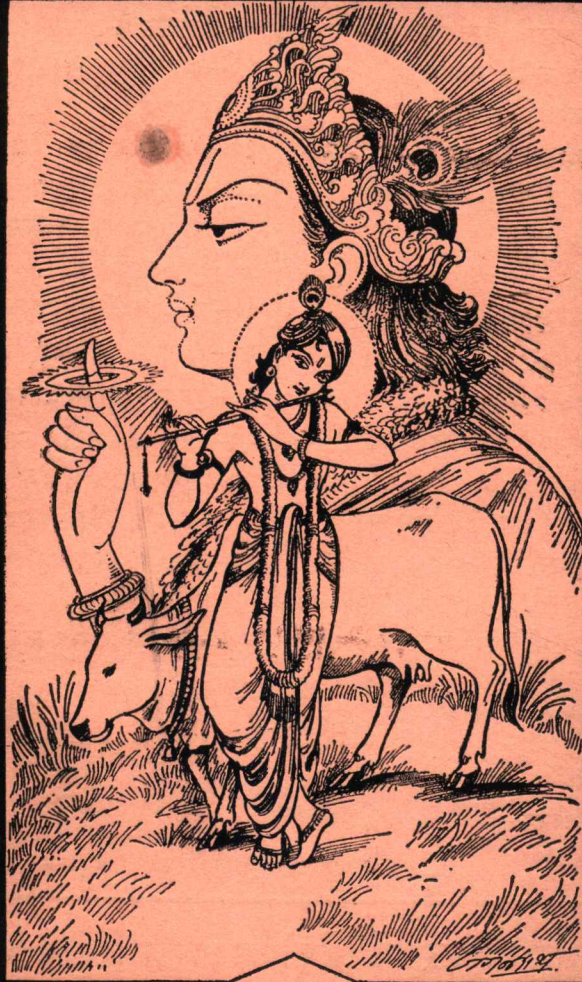


कल्याण



वर्ष ३५] * [अङ्क ३

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-जनकपुरमें श्रीराम-लक्ष्मण [कविता] ...	७६५
२-कल्याण ('शिव') ...	७६६
३-ईश्वर-पूजन (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) ...	७६७
४-अन्तकालमें हुए परमात्मचिन्तनका महत्त्व (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ...	७७०
५-पागलकी झोली (महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज) ...	७७४
६-वेदोंमें अद्वैतवाद (श्रीश्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि) ...	७७८
७-मधुर ...	७८१
८-गीताका सार (श्रीब्रिजलालजी बियाणी)	७८३
९-स्वाहा और स्वधा (आचार्य श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए०) ...	७८५
१०-कुब्जा-प्रसङ्गका रहस्य (पं० श्रीव्रजमोहन-जी दीक्षित वैद्य) ...	७८६
११-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददास-जी, श्रीभती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्द-प्रसाद श्रीवास्तव) ...	७८७
१२-वैज्ञानिकसंजीवनी (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)	७९२

कल्याण, सौर चैत्र २०१७, मार्च १९६१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१३-मेरे मोहका सर्वथा नाश हो गया है ...	७९८
१४-आजकी शोचनीय प्रगति (श्रीराम-कुटिया, रेवदरसे) ...	७९९
१५-अस्थिर जीवन [कविता] (श्रीगणेशदत्त सारस्वत एम० ए०) ...	८०२
१६-चन्द्र-परीक्षा-रहस्य (श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज) ...	८०३
१७-विज्ञानके उच्च अध्ययनमें देवभाषा संस्कृतका महत्त्व (डा० श्रीरवीन्द्रप्रतापराव-जी प्राध्यापक, रसायन-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) ...	८०७
१८-मन-इन्द्रियाँ मेरे आज्ञाकारी सेवक हो गये हैं	८१०
१९-अपराधीसे महात्मा (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	८११
२०-तुम एक परिपूर्ण छाये हो [कविता] ...	८१९
२१-गीत [कविता] ('बच्चन') ...	८२०
२२-मनोहर घाट (पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न)	८२१
२३-मुझपर भगवान्की निरन्तर अपार कृपा-वर्षा हो रही है ...	८२४
२४-पढ़ो, समझो और करो ...	८२५

चित्र-सूची

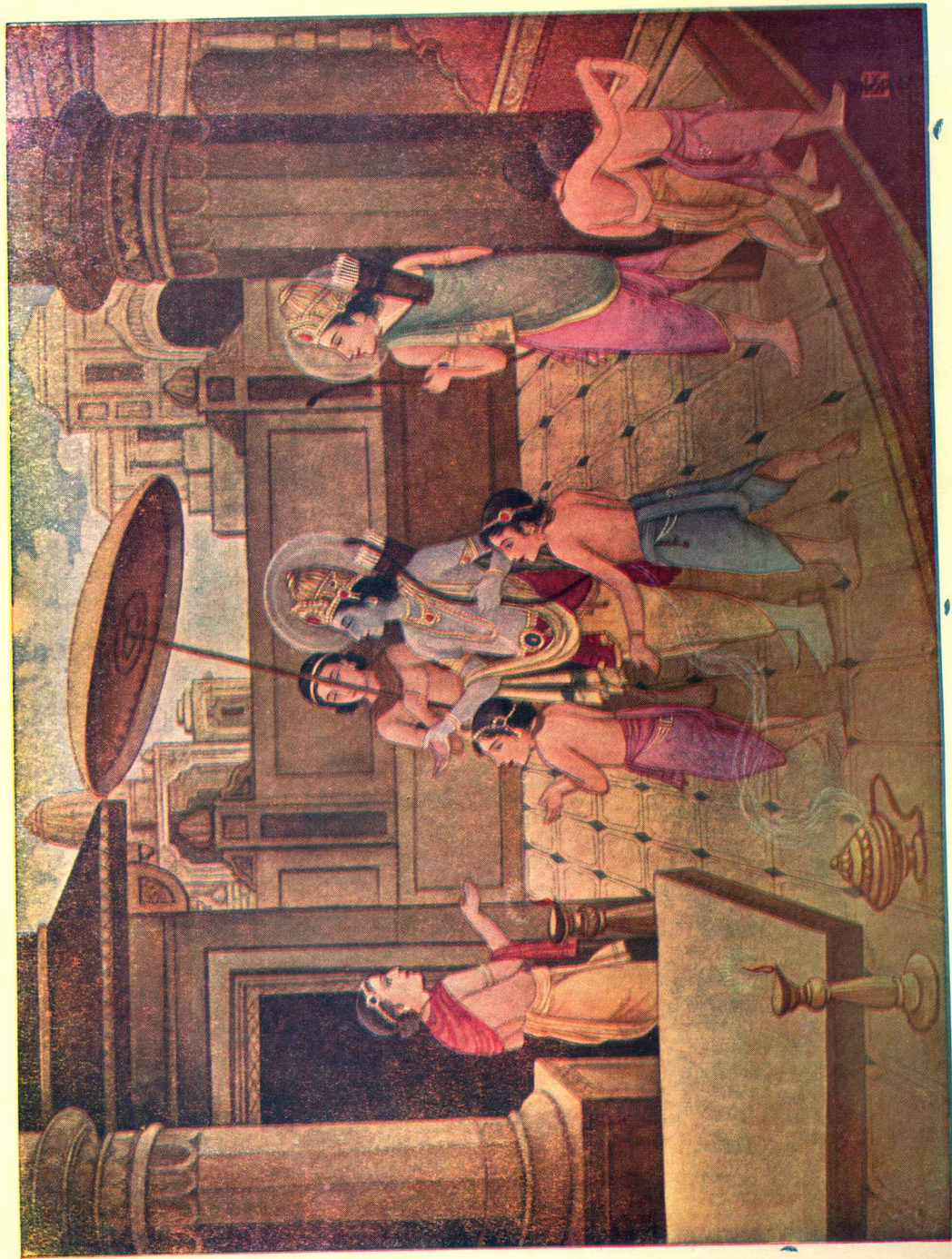
१-भगवान्के मधुरूप और कालरूपकी एकता (रेखाचित्र) ...	... मुखपृष्ठ
२-जनकपुरमें श्रीराम-लक्ष्मण (तिरंगा) ...	... ७६५

वार्षिक मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनन्द भूमा जय जय ॥
 भारतमें रु० ७.५० } जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
 विदेशमें रु० १०.०० } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥
 (१५ शिल्लिंग)

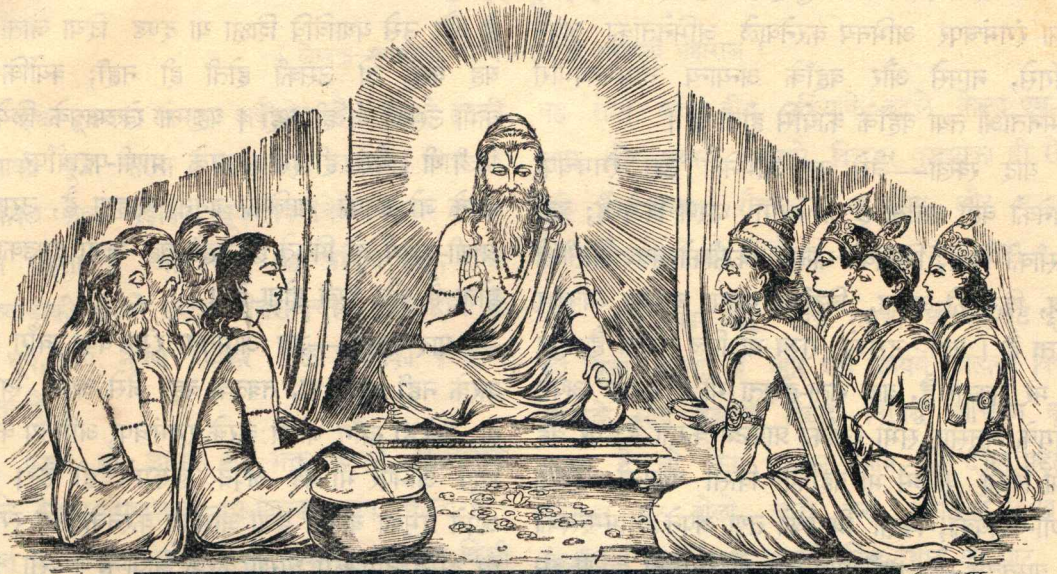
{ साधारण प्रति
 भारतमें .४५
 विदेशमें .५५
 (१० पैसे)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्नलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च । यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः ॥
यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति च स्फुटम् । श्रुत्वा ह्युदीर्यते साम्नि तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

वर्ष ३५ }

गोरखपुर, सौर चैत्र २०१७, मार्च १९६१

{ संख्या ३
पूर्ण संख्या ४१२

जनकपुरमें श्रीराम-लक्ष्मण

बालक बृन्द देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ॥
पीत वसन परिकर कटि भाथा । चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तनु अनुहरत सुचंदन खोरी । स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन मयंक तापत्रय मोचन ॥
कानन्हि कनक फूल छवि देहीं । चितवत चितहि चोरि जनु लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥

—रामचरितमानस, बा० २१९। १-४

कल्याण

याद रखो—संसारमें इस शरीरसे तथा शरीरके सम्बन्धी प्राणी-पदार्थमात्रसे तुम्हारा वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा रंगमंचपर अभिनय करनेवाले अभिनेताका अपने खाँगसे, नामसे और वहाँके अन्यान्य नाम-रूपधारी अभिनेताओं तथा वहाँके कार्योंसे होता है।

याद रखो—जैसे वह अभिनेता उस रंगमंचपर अपनेको वही बताता है जो खाँग धारण किये है; वहाँ किसीको पिता, किसीको माता, किसीको पुत्र, किसीको मित्र, किसीको अपना, किसीको पराया बताकर व्यवहार करता है। वहाँ उसको राज्य भी मिल सकता है, पुत्र भी मर सकता है, वह रोता-हँसता भी है। वह अपने खाँगके अनुसार सभी रसोंका प्राकट्य करता है; पर वह कभी किसी कालमें भी वहाँकी किसी वस्तुको, किसी प्राणी-पदार्थको, किसी क्रियाको तथा अपने नाम-रूपको भी वास्तवमें सत्य नहीं मानता। वह जानता है, मैं इस पोशाक तथा नामको ग्रहण करके, ऐसे ही अन्यान्य खेल करनेवाले अभिनेताओंके साथ खेल करता हूँ। वैसे ही तुम भी एक अभिनेता हो; तुम्हारे ये नाम-रूप केवल खेलनेको मिले हैं, ये तुम्हारे वास्तविक स्वरूप नहीं हैं।

याद रखो—रंगमंचपर मिले हुए सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, धनप्राप्ति-धननाश, पुत्रप्राप्ति-पुत्रमरण, विजय-पराजय, प्रिय-अप्रिय, सिद्धि-असिद्धि, मित्र-शत्रु आदि केवल अभिनयमात्र हैं। वह अभिनेता इन सभी द्वन्द्वोंसे अपनेको सर्वथा परे तथा इन्हें खेलमात्र मानकर अपने अंदर इनसे निर्लेप रहता है। न कभी इनमें उसकी आसक्ति होती है न द्वेष, न ममता होती है न द्रोह, न इनकी कामना होती है न वासना। वह सारे कार्य अपने खाँगके अनुसार यथाविधि सुचारु-रूपसे करता हुआ भी निर्द्वन्द्व रहता है। वैसे ही तुम भी इस संसारमें सब कुलका केवल इस शरीर और नामसे ही सम्बन्ध मानकर यहाँ अभिनेताकी भाँति सारे काम भलीभाँति करते हुए भी निष्काम, अनासक्त-निर्लेप रहो।

याद रखो—कोई अभिनेता रंगमंचकी पहनी पोशाक, गहने आदिपर, या वहाँ बने हुए पुत्र, पत्नी

आदिपर वस्तुतः अपना अधिकार करना चाहे या उन्हें अपना बतावे तो वह जैसे पागल या अपराधी माना जाता है और उसे यथाविधि शिक्षा या दण्ड दिया जाता है। वह वस्तु तो उसकी होती ही नहीं; क्योंकि वह कभी उसकी थी ही नहीं। वह तो खेलमात्रके लिये उसे मिली थी। वैसे ही इस संसारके प्राणी-पदार्थोंपर ममता करके जो उनका मालिक बनना चाहता है, उसको वे प्राणी-पदार्थ तो मिलते ही नहीं, वह उल्टा दण्डका पात्र होता है और दुखी होता है।

याद रखो—जब अभिनेता रंगमंचपर खाँग धारण करके नहीं आया था, तबतक वह जैसे अपने स्वरूपमें था, वैसे ही खाँग धारण करके रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आनेपर भी वह अपने स्वरूपमें ही है। केवल अपने प्रभुका बताया हुआ अभिनय करनेके लिये रंगमंच-पर दूसरा नाम-रूप धारण करके आया है। इसी प्रकार तुम भी इस शरीर और नामको धारण करके प्रभुकी प्रीतिके लिये खेल करने आये हो। इस बातको याद रखते हुए अपने खाँगके अनुसार प्रभुप्रीत्यर्थ खेल करते रहो। अपनेको सदा प्रभुका आदेश पालन करनेवाला सेवक बनाये रखो। जबतक वे नाम-रूप देकर संसारमें काम कराना चाहते हैं, तबतक अपने खाँगके अनुसार काम करते रहो। पर सदा यही दृढ़ अनुभव करते रहो कि इस कामसे तथा जिनके साथ तुम्हारे इस कामको लेकर व्यवहार होता है, उनसे वस्तुतः तुम्हारा कोई भी सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारा सम्बन्ध तो केवल प्रभुसे है। वे तुम्हारे बहुत ही भले नित्य मालिक हैं और तुम उनकी रुचिके अनुसार चलनेवाले नित्य सेवक हो।

याद रखो—प्रभुका सेवक वही है, जिसपर दूसरे किसीका—किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिका अधिकार नहीं है तथा जो प्रभु-सेवाको छोड़कर किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिपर अपना अधिकार नहीं मानता। ऐसा अनन्य सेवक ही प्रभुका यथार्थ सेवक है और प्रभु भी उसीके अनन्य स्वामी हैं।

‘शिव’

ईश्वर-पूजन

(लेखक-स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

ईश्वर-पूजनका सामान्य अर्थ होता है—अपने इष्टकी प्रतिमाकी पूजा करना । वह प्रतिमा कागजका चित्र हो तो केवल फूल चढ़ाकर, धूप-दीप-नैवेद्य रखकर संतोष करना पड़ता है और यदि वह प्रतिमा धातु, पत्थर या लकड़ीकी हो तो उसका षोडशोपचार पूजन होता है और धूप, दीप, नैवेद्य रखकर भक्त अपनेको कृतकृत्य मानता है ।

पूजन हो जानेके बाद भक्त अपने इष्टदेवताके सामने बैठकर यथाशक्ति इष्ट-मन्त्रका जप करता है । पश्चात् स्वाध्यायके निमित्त अपने साधनके अनुकूल किसी स्तोत्र या सहस्रनाम आदिका पाठ करता है । इस प्रकारसे ईश्वर-पूजन समाप्त करके साधक अपने दूसरे दैनिक व्यवहारके काममें लग जाता है ।

इतना और इस प्रकारका ईश्वर-पूजन प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन करना चाहिये । इसके किये बिना देव-ऋणसे उद्धार नहीं होता । यह करना दूसरी दृष्टिसे भी आवश्यक है; क्योंकि इससे अन्तःकरण शुद्ध होता है और फलस्वरूप इष्टदेवताके दर्शन होते हैं ।

ऐसा करनेपर भी, घंटे-दो घंटे ईश्वरका पूजन करें और बाकी समयमें, जीवनके व्यवहारमें यदि ईश्वरकी स्मृतितक न रहे तो यह घंटे-दो घंटेका पूजन बहुत कम फल देता है, अर्थात् उसका फल नहींके बराबर हो जाता है ।

उदाहरणार्थ, एक मनुष्य अपने रोगकी निवृत्तिके लिये किसी सद्बैद्यका आश्रय लेता है । वैद्यराज उसके रोगका निदान करके उसको दिनमें तीन बार खानेके लिये पुड़िया देते हैं और साथ-साथ उसीके अनुकूल अमुक प्रकारका पथ्य-परहेज करनेके लिये कहते हैं । अब

वह रोगी यदि तीन पुड़ियाके बदले केवल एक ही खाय और पथ्यके स्थानमें दिनभर कुपथ्यका ही सेवन करे तो उसका रोग दूर न होगा और न इसके लिये वैद्यराजको ही जिम्मेवार ठहराया जा सकेगा ।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य घंटे-दो-घंटे ईश्वरकी पूजा करता है और शेष समयमें अत्यन्त विषयासक्तिके साथ ईश्वरके विरुद्ध निषिद्ध आचरण करता रहता है तो फिर पूजाका प्रभाव कैसे दीख पड़ेगा ? दिनभर झूठ बोलो, चोरी करो, दूसरोंको दुःख दो, किसीका हक हड़प जाओ, दिन-दहाड़े छूट-पाट करो और फिर रातमें दो घड़ी माला जपो अथवा सबेरे ईश्वरकी पूजा करो तो इस पूजासे कुछ लाभ नहीं होगा । पूजनसे जितनी जगह साफ होती है, वहाँ दिनभरके कुटिल व्यवहारसे, काजलकी तह-पर-तह अन्तःकरणके ऊपर जम जाती है, जिसको साफ करनेके लिये जन्म-जन्मान्तरकी जरूरत पड़ती है । इसलिये खास आवश्यकता यह है कि साधकका सारा जीवन सदाचार-युक्त हो और पापाचरण तो हो ही नहीं । तभी अन्तःकरणके ऊपर मैलकी तह नहीं चढ़ेगी ।

यहाँ, जिसने कभी इस विषयपर कोई भी विचार न किया हो, उसको ऐसी शक्का होगी कि 'ईश्वरका पूजन घंटे-दो-घंटे यथाशक्ति करना तो ठीक है, परंतु सारे जीवनको इस प्रकार शुष्क और नीरस बना डालनेकी क्या आवश्यकता है ? अधिक-से-अधिक भोग-सामग्री इकट्ठा करके सब प्रकारके वैभवके भोगनेमें क्या बुराई है ? ईश्वरको भी न भूलें और वैभवका भी आनन्द लें, जिससे जीवन धन्य-धन्य हो ।'

इसके उत्तरमें निवेदन यह है कि ऐसा विचार

उसीका होता है, जो मनुष्य-शरीरके मूल्यको नहीं समझता। मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है और इसकी सार्थकता ईश्वरकी प्राप्ति करनेमें है, न कि भोग भोगनेमें। यदि भोग ही मनुष्य-जीवनका ध्येय होता तो इसको देव-दुर्लभ कहते ही नहीं; क्योंकि भोग तो सभी शरीरोंमें बिना श्रमके ही मिलते रहते हैं। फिर वे भोग स्वयं क्षणिक हैं, इसलिये भोग-कालमें सुखका भान कराकर परिणाममें दुःख ही देते हैं। यदि भोग-सामग्री इच्छानुसार विपुल परिमाणमें प्राप्त भी हो जाय, तथापि किसीको उससे तृप्ति हुई हो—यह कहीं नहीं सुना गया। जैसे-जैसे मनुष्यके भोग बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे ही भोगतृष्णा भी बढ़ती जाती है। फिर मनुष्यके शरीरकी शक्ति भी परिमित है, अतएव प्राप्त भोग भी यथेच्छ परिमाणमें भोगे नहीं जा सकते। इससे परिणाममें अतृप्तिका ही बोध होता है और अतृप्ति ही दुःखका दूसरा नाम है। इस प्रसङ्गमें ययाति राजाका दृष्टान्त संसारमें प्रसिद्ध है। उसने अपना सारा जीवन-काल भोग भोगनेमें ही बिता दिया। संसारके सारे भोग प्राप्त होनेपर भी उसे तृप्ति न हुई। इसलिये उसने एक हजार वर्ष पुत्रकी जवानी लेकर उसको भी भोग भोगनेमें लगाया, तथापि तृप्ति तो हुई ही नहीं, बल्कि उसकी अशान्ति अपार बढ़ गयी। अन्तमें उसने कहा—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥

अर्थात् भोग भोगनेसे कभी तृप्ति नहीं होती; बल्कि अग्निमें जैसे घी डालनेसे अग्नि अधिक भड़कती है, वैसे ही भोग भोगनेसे भोग-तृष्णा अधिकाधिक प्रबल होती है और तृष्णा ही जीवनमें बड़ा संताप है।

फिर शरीरका नाम ही है—भोगायतन अर्थात् पूर्वकृत कर्मोंके सुख-दुःख आदि फल भोगनेका स्थान। पातञ्जल योगदर्शन कहता है—सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। अर्थात् जबतक कर्मरूपी मूल है, तबतक उसके परिणामस्वरूप 'किस योनिमें जन्म

हो, कितनी आयु हो, क्या-क्या भोग प्राप्त हों'—ये सभी प्राणीका जन्म होनेके पहले ही निश्चित हो जाते हैं। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस वस्तुका निर्णय जन्म होनेके पहलेसे ही हो जाता है, उसकी प्राप्तिके लिये व्यर्थ ही जीवनको गवाँना अपने जीवनके अमूल्य समयका अपव्यय करना नहीं तो और क्या है? क्योंकि निश्चित भोग तो मिलनेवाले ही हैं और हजार बार सिर पटकनेपर भी प्रारब्धसे अधिक कुछ मिलनेवाला है ही नहीं।

देवयोनि भी भोग-योनि ही है। निकृष्ट योनि और देवयोनिमें अन्तर इतना ही है कि देव-योनिका शरीर दिव्य होता है और उसके भोग भी दिव्य होते हैं, परंतु नीची योनिमें शरीरके परिमाणमें तुच्छ भोग होते हैं। इसके सिवा दूसरा कोई भेद नहीं है। देव-योनिमें भी दूसरी योनियोंके समान भोग समाप्त होनेपर शरीर छूट जाता है और जीव दूसरा शरीर धारण करता है। इसलिये सब शरीरधारियोंमें मनुष्य-शरीर ही श्रेष्ठ है और इसी शरीरसे मनुष्य अपने सर्जनहारके साथ तादात्म्य साध सकता है। कबीरदासजीने भी कहा है—

जो उत्तम करनी करे तो नर नारायण होय ।

दूसरी किसी योनिमें रहकर नारायण बनना सम्भव नहीं; मनुष्ययोनि ही एक ऐसी अमूल्ययोनि है कि जिससे नर नारायण हो सकता है।

अब यह तो निश्चय हो गया कि मनुष्य-जीवनका ध्येय विषयभोग नहीं, बल्कि ईश्वर-प्राप्ति ही होना चाहिये। इस बातके समर्थनमें श्रीभगवान्का एक ही वचन उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा। भागवतमें श्रीभगवान्ने उद्धवजीसे कहा है—

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।

यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्यैर्नाप्नोति मामृतम् ॥

‘बुद्धिमान् और चतुर मनुष्योंकी बुद्धि और चतुराई इसीमें है कि इस संसारमें जन्म लेकर अनृत-मर्त्य अर्थात्

क्षणभङ्गुर और विनाशशील इस मनुष्य-शरीरसे इसका सदुपयोग करके सत्य और अमर अर्थात् अजर, अमर, अविनाशी मुझको प्राप्त कर ले ।' थोड़ेमें भगवान् यही समझाते हैं कि विनाशशील मनुष्य-शरीरसे मेरे अविनाशी स्वरूपकी प्राप्ति कर लेनेमें ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है ।

अब इस ध्येयतक पहुँचनेके लिये हमें सारे जीवनको ईश्वर-पूजनरूप बनाना है; अतः यह देखना है कि उसकी सिद्धि कैसे होगी ।

सर्वसाधारणके लिये शास्त्रोंने बहुत ही सरल और सीधा परंतु अमोघ मार्ग बतलाया है । इस मार्गका अवलम्बन बालक-वृद्ध, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख, बलवान्-निर्बल, पुरुष-स्त्रीतक सभी कर सकते हैं । वह निष्कण्टक मार्ग यह है—

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः ।

संतोषं जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम् ॥

अर्थात् किसी भी साधनसे किसी भी देहधारीको सुख पहुँचाना ईश्वर-पूजन है । इसका कारण यह है कि सभी देहोंमें जीवरूपसे एक ही ईश्वर विराज रहा है । देह सभी विभिन्न आकारके तथा कदके होते हैं, तथापि सब देहोंमें एक ही ईश्वर जीवरूपमें विराजमान है । अतएव किसी भी देहधारी जीवको सुख पहुँचाना ईश्वरको ही सुख पहुँचाना कहलायेगा और ईश्वरको प्रसन्न करनेवाली प्रत्येक क्रियाका नाम ही ईश्वर-पूजन है । अतः चींटियोंको अन्न देना भी ईश्वर-पूजन है; क्योंकि उससे असंख्य जीवोंकी तृप्ति होती है, इसलिये वह ईश्वर-पूजन है । हम रास्तेमें चले जा रहे हैं और सामने आनेवाला एक मनुष्य पृष्ठता है—

‘भाई ! अस्पताल किधर है ?’—तो उस मनुष्यको अस्पतालका रास्ता बताना, यदि वह अजनबी हो तो उसको अस्पतालतक पहुँचा आना और यदि वहाँ अपनी जान-पहचान हो तो उसका उपयोग करके उसे अस्पतालमें सुविधा दिलाना—इन सब कर्मोंका नाम भी ईश्वर-पूजन है; क्योंकि इससे भी एक देहधारीका जीव

संतुष्ट होता है । इसी प्रकार भूखेको भोजन देना, प्यासेको पानी देना, नंगेको वस्त्र देना भी ईश्वर-पूजन है । मानसिक चिन्ता-ग्रस्तको मीठे शब्दोंमें आश्वासन देना, नौकरी ढूँढ़नेवालोंको जहाँतक हो, सहायता करना भी ईश्वर-पूजन है । हम रेलगाड़ीमें बैठे हों और कोई मुसाफिर बैठने आवे तो उसको विवेकके साथ भीतर ले लेना और खयं खड़े होकर उसको बैठनेकी जगह देना भी ईश्वर-पूजन ही होगा । हम शिक्षित हैं तो अशिक्षितको विद्या प्रदान करना या सच्ची सलाह देना, हम शिक्षक हैं तो विद्यार्थीको पुत्रवत् समझकर प्रेमसे पढ़ाना, हम वकील हैं तो अपने मक्किलको सच्ची सलाह देना, सच्चे रास्तेपर चलाना, हम डाक्टर हैं तो धनका लोभ न करके बीमारको मीठी वाणीसे धीरज देना तथा उसको शीघ्र स्वस्थ करनेके लिये औषधका प्रयोग करना—ये सभी ईश्वर-पूजन कहलायेंगे और इस प्रकारके पूजनका ईश्वरके घर बहुत आदर होता है । सारांश यह कि अपने नित्यके व्यवहारमें किसी भी देहधारीको किसी भी प्रकारसे मदद देना और उसे संतोष प्रदान करके प्रसन्न करना ईश्वर-पूजन है ।

ईश्वर-पूजनका यह मार्ग इतना अधिक सरल और सहज है कि किसी भी स्थितिका मनुष्य इसको कर सकता है । केवल इस प्रकारकी दृष्टि होनी चाहिये । एक बार यह दृष्टि हो जाय तो फिर सारा ही जीवन ईश्वर-पूजनरूप बन जायगा । इस प्रकार सामान्यतः प्रत्येक मनुष्य अपना-अपना व्यवहार करते हुए, साथ-ही-साथ ईश्वर-पूजन भी किस प्रकार कर सकता है और वैसा करके सारे जीवनको ईश्वर-पूजन-रूप कैसे बना सकता है—यह देख लिया ।

अब इसकी अपेक्षा भी अधिक उच्च कोटिका ईश्वर-पूजन शास्त्रोंमें बताया गया है, उसे देखिये । यह पूजन सर्वजनसुलभ नहीं है; परंतु जो दृढ़निश्चयी हैं तथा सूक्ष्मबुद्धिवाले हैं, उन्हींसे यह पूजन हो सकता है । [शेष आगे]

अन्तकालमें हुए परमात्मचिन्तनका महत्त्व

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

शास्त्रोंमें भगवान्‌के निर्गुण और सगुण—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। इन दोनोंमें जो निर्गुण है, वह तो निराकार है ही। सगुणके भी दो भेद हैं—(१) सगुण निराकार, (२) सगुण साकार। भगवान्‌के इन तीनों स्वरूपोंमेंसे किसी एकका भी चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य देह छोड़कर जाता है, वह सदाके लिये इस संसारसे मुक्त होकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है। उस परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिही ही अव्यक्त, अक्षर, परमगति, परमधाम आदि अनेक नामोंसे कहा जाता है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(गीता ८।२१)

“जो अव्यक्त ‘अक्षर’ इस नामसे कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्त भावको परमगति कहते हैं; तथा जिस सनातन अव्यक्तभावको प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है।”

भगवान्‌कहते हैं कि जो मेरा स्मरण करता हुआ मरता है, वह मुझ परमात्माको प्राप्त हो जाता है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(गीता ८।५)

“जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात्स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।”

यदि कोई मनुष्य ऐसा कहे कि क्या भगवान्‌ भी पक्षपाती हैं, जो उन्हें स्मरण करनेवालेका तो उद्धार कर देते हैं और स्मरण न करनेवालेका उद्धार नहीं करते, तो वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। भगवान्‌ तो समदर्शी हैं, पक्षपाती नहीं; उनकी तो सबपर समानरूपसे कृपा है। परंतु यह एक साधारण नियम है कि मरणकालमें मनुष्य जिस-जिस देवता, मानव, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं

पहाड़ आदिका स्मरण करके देह-त्याग करता है, वह उसी रूपको प्राप्त हो जाता है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥
(गीता ८।६)

“हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।”

भगवान्‌ इस नियमको बतलाकर कहते हैं कि ‘जब ऐसा नियम ही है, तब तू सगुण साकार परब्रह्मरूप मुझ कृष्णको हर समय याद करता हुआ, मेरेमें मन-बुद्धिको लगाकर युद्ध कर; इस प्रकार करनेसे तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।’

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मा मेवैष्यस्य संशयम् ॥
(गीता ८।७)

सारथिरूपमें रथपर विराजमान भगवान्‌के साथ रहनेसे हर समय उन सगुण साकार परब्रह्मस्वरूप भगवान्‌ श्रीकृष्णका चिन्तन होना सहज ही है और मनुष्य निरन्तर जिस वस्तुका चिन्तन करता है, अन्तकालमें भी उसी वस्तुकी स्वाभाविक स्मृति हो जाती है। अतः भगवान्‌के सगुण साकार स्वरूपका चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य शरीर छोड़ता है, वह भगवान्‌के सगुण स्वरूपको प्राप्त हो जाता है—इसमें संदेह नहीं है।

यह बात बतलाकर अब सगुण निराकारके चिन्तनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है, यह बतलाया जाता है। सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप परम दिव्य पुरुष परमात्माका चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य मरता है, वह भी उस चिन्तनके प्रभावसे परमात्माको प्राप्त हो जाता है—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

कवि पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(गीता ८।८—१०)

‘हे पार्थ ! यह नियम है कि परमेश्वरके ध्यानके अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम दिव्य पुरुषको अर्थात् परमात्माको ही प्राप्त होता है । जो पुरुष सर्वज्ञ, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म, सबको धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्यासे अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दधन परमेश्वरका स्मरण करता है, वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमें भी योगबलसे भ्रुकुटीके मध्यमें प्राणको अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ उस दिव्यस्वरूप परमपुरुष परमात्माको ही प्राप्त होता है ।’

वह परम दिव्य पुरुष परमात्मा अव्यक्त, निराकार, सर्वव्यापी है और यह सारा संसार उस परमात्माके ही एक अंशमें स्थित है । जैसे वायु, तेज, जल, पृथ्वी—इन चारों महाभूतोंका समूह एक अव्यक्त, निराकार आकाशके ही अन्तर्गत है और आकाश इन चारोंमें व्यापक है, उसी तरह परमात्मा सम्पूर्ण चराचर भूत-प्राणियोंके बाहर-भीतर व्यापक है और सारे भूत-प्राणियोंका समूह उस परमात्माके ही किसी एक अंशमें है—

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥
(गीता ८।२२)

‘हे पार्थ ! जिस परमात्माके अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दधन परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण

है, वह सनातन अव्यक्त परमपुरुष परमात्मा तो अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य है ।’

जैसे मनुष्य सगुण साकार और सगुण निराकारके चिन्तनसे परमात्माको प्राप्त होता है, उसी प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य शरीरका त्याग करता है, वह भी परमगतिस्वरूप निर्गुण सच्चिदानन्दधन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है । उस परम अक्षर-स्वरूप परमात्माकी महिमा बतलाते हुए भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशान्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥

(गीता ८।११)

‘वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दधनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका पाठन करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा ।’

इस निर्गुण निराकार परमात्माको ही परम अक्षर ब्रह्मके नामसे कहा गया है—

‘अक्षरं ब्रह्म परमम्’

(गीता ८।३ का प्रथम पाद)

इस अक्षर ब्रह्मका ही नाम ‘ओम्’ है । इसलिये अन्तकालमें ओंकारका उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थरूप सच्चिदानन्दधन निर्गुण निराकार ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य देह त्यागकर जाता है, वह परमगतिको अर्थात् परमात्माको प्राप्त होता है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥
(गीता ८।१३)

इस प्रकार भगवान्के उपर्युक्त तीनों स्वरूपोंमेंसे किसी एकका भी स्मरण करता हुआ ब्रह्मज्ञानी मनुष्य अर्चिर्मागसे ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

(गीता ८।२४)

‘जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता है, शुक्लपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ।’

यहाँ ‘ज्योतिः’ पद ‘अग्निः’ का विशेषण है और ‘अग्निः’ पद अग्नि-अभिमानी देवताका वाचक है । इसका स्वरूप दिव्य प्रकाशमय है । पृथ्वीके ऊपर समुद्रसहित सब देशमें इसका अधिकार है तथा उत्तरायणमार्गसे जानेवाले अधिकारीका दिनके अभिमानी देवतासे सम्बन्ध करा देना ही इसका काम है । उत्तरायण मार्गसे जानेवाला जो उपासक रात्रिमें शरीर त्याग करता है, उसको रात्रिभर यह अपने अधिकारमें रखकर दिनके उदय होनेपर दिनके अभिमानी देवताके अधीन कर देता है और जो दिनमें मरता है, उसे तुरंत ही दिनके अभिमानी देवताको सौंप देता है ।

इसी तरह दिनके अभिमानी देवताका अधिकार पृथ्वीलोककी सीमा अर्थात् जहाँतक आकाशमें पृथ्वीके वायुमण्डलका सम्बन्ध है, वहाँतक है और उत्तरायण मार्गसे जानेवाले उपासकको शुक्लपक्षके अभिमानी देवतासे सम्बन्ध करा देना ही इसका काम है ।

शुक्लपक्षके अभिमानी देवताका अधिकार भूलोककी सीमाके बाहर अन्तरिक्षलोकमें—जिन लोकोंमें पंद्रह दिनके दिन और उतने ही समयकी रात होती है, वहाँतक है; और उत्तरायण मार्गसे जानेवाले अधिकारीको अपनी सीमासे पार करके उत्तरायणके अभिमानी देवताके अधीन कर देना इसका काम है ।

जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तर दिशाकी ओर चलते हैं, उस छमाहीको उत्तरायण कहते हैं । उस उत्तरायण-कालाभिमानी देवताका वाचक ‘षण्मासा उत्तरायणम्’

है । अन्तरिक्षलोकके ऊपर जिन लोकोंमें छः महीनोंके दिन एवं उतने समयकी ही रात्रि होती है, वहाँतक इसका अधिकार है और उत्तरायण-मार्गसे जानेवाले परमधामके अधिकारीको अपनी सीमासे पार करके उपनिषदोंमें वर्णित संवत्सरके अभिमानी देवताके पास पहुँचा देना इसका काम है । वहाँसे आगे संवत्सरका अभिमानी देवता उसे सूर्यलोकमें पहुँचाता है । वहाँसे क्रमशः आदित्याभिमानी देवता चन्द्राभिमानी देवताके अधिकारमें और वह विद्युत्-अभिमानी देवताके अधिकारमें पहुँचा देता है । फिर वहाँपर भगवान्‌के परमधामसे भगवान्‌के पार्षद आकर उसे परमधाममें ले जाते हैं, तब उसका भगवान्‌से मिलन हो जाता है ।

उस ब्रह्मरूप परमपदको प्राप्त होकर वह पुनः इस संसारके जन्म-मरणरूप चक्रमें नहीं आता । ब्रह्माके लोकतक गया हुआ प्राणी पुनः इस संसारमें लौटकर कर्मानुसार योनिमें जन्म लेता है; क्योंकि ब्रह्मा और उसका लोक—दोनों ही अवधिवाले हैं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

(गीता ८।१६ का पूर्वार्ध)

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्षद् ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

(गीता ८।१७)

चारों युगोंके समयको मिलानेपर एक दिव्य युग होता है । कलियुग ४, ३२,००० वर्ष, द्वापर ८, ६४,००० वर्ष, त्रेता १२, ९६,००० वर्ष एवं सत्ययुग १७, २८,००० वर्ष । इस तरह कुल ४३, २०,००० वर्षोंका एक दिव्ययुग होता है । देवताओंके समयका परिमाण हमारे समयके परिमाणसे ३६० गुना अधिक माना जाता है, अतः एक हजार दिव्ययुगोंका अर्थात् हमारे ४, ३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षका ब्रह्माका एक दिन और इतनी ही बड़ी एक रात्रि होती है । इस तरहके १०० वर्ष बीत जानेपर अपने लोकसहित ब्रह्मा भी शान्त हो जाता है । इस विषय-

का विशद वर्णन मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायमें श्लोक ६४ से ७३ वें तक है ।

सारे जड़-चेतन प्राणियोंके शरीर ब्रह्माके उस अव्यक्त निराकार स्वरूपसे, ब्रह्माके दिनके आरम्भमें तो प्रकट होते हैं और ब्रह्माके दिनके अन्तमें पुनः उसीमें विलीन हो जाते हैं—

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

(गीता ८ । १८)

इस प्रकार अवधिवाले होनेसे ब्रह्मा और ब्रह्माका लोक भी अवधि पूर्ण होनेपर विनाशको प्राप्त हो जाते हैं । इन सबका विनाश होनेपर भी सच्चिदानन्दघन परमात्माका नाश नहीं होता—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

(गीता ८ । २०)

‘उस अव्यक्तसे भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्तभाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता ।’

निरन्तर अभ्यासके प्रभावसे मनुष्यको इस जीवनकालमें ही परम दिव्य पुरुष परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि निरन्तर स्मरण करनेवालेको भगवान्की प्राप्ति सुगम है । भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गीता ८ । १४)

‘हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमका स्मरण करता है, उस नित्य निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ ।’

इस प्रकार अभ्यास करनेवालेको जब इस जन्ममें

ही भगवान् मिल सकते हैं, तब अन्तकालमें मिल जाते हैं—इसमें तो कहना ही क्या है । परमात्माको हर समय याद रखना भी कोई कठिन काम नहीं है । और जो परमात्माको प्राप्त हो जाता है, वह फिर दुःखरूप इस संसारमें लौटकर कभी नहीं आता—

भामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥

(गीता ८ । १५)

वह पुरुष सम्पूर्ण संसारका उल्लङ्घन करके परमपद-रूप परमात्माको सदाके लिये प्राप्त हो जाता है—

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव

दानेषु यन्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा

योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

(गीता ८ । २८)

‘योगी पुरुष इस रहस्यको जानकर वेदोंके पढ़नेमें तथा यज्ञ, तप और दानादिके करनेमें जो पुण्यफल कहा है, उस सबको निस्संदेह उल्लङ्घन कर जाता है और सनातन परमपदको प्राप्त होता है ।’

गीताके इस आठवें अध्यायमें मनुष्यके मरणकालमें हुए भगवच्चिन्तनके विशेष महत्त्वका वर्णन है । अतः मृत्युके समय पुरुषको अर्थसहित यह अध्याय अवश्य सुनाना चाहिये । यदि सारा-का-सारा अध्याय न सुनाया जा सके तो ऊपर जिन श्लोकोंका वर्णन आया है, कम-से-कम ये खास-खास श्लोक तो अवश्य ही अर्थसहित सुना देने चाहिये; क्योंकि इन श्लोकोंमेंसे मनुष्य एक श्लोकके भी अर्थ और भावको समझकर धारण कर लेता है तो सहजमें ही उसका कल्याण हो सकता है । फिर जो सदा-सर्वदा हर समय भगवान्के सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार—किसी भी स्वरूपको याद रखता है, उसके लिये तो अन्तकालमें परमात्माकी स्मृति हो जानी बहुत ही सहज है ।

पागलकी शैली

[बिल्ववृक्षकी छायामें]

(लेखक—महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ँकारनाथजी महाराज)

[गताङ्कसे आगे]

हरिदास—धनुषका परिमाण कितना होता है ?

पागल—‘राम राम सीताराम’ चार हाथ । बिल्ववृक्षके चारों ओर २५ हाथ पर्यन्त तीर्थक्षेत्र होता है । तत्पश्चात् श्रीभगवान् बोले—‘इसके ऊर्ध्वपत्र शंकर, वामपत्र ब्रह्मा और दक्षिण पत्र मैं हूँ । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । मन्त्रोच्चारण करके बिल्वपत्र चढ़ानेसे सहस्र पद्म अर्पित करनेका फल होगा । प्रातः बिल्ववृक्षका दर्शन करनेसे शिवदर्शनका फल होता है । बिल्ववृक्षकी डाल न तोड़े और न उसके ऊपर चढ़े । जय-जय राम सीताराम सीताराम । अमावस्या, पूर्णिमा और द्वादशी तिथिमें बिल्वपत्र चयन न करे । बिल्ववृक्षपर ऊपरसे बिल्वपत्र चयन करना अच्छा है, परंतु बिल्वकी शाखा तोड़ना ठीक नहीं । खण्डित या अखण्डित, सभी पत्रोंसे शिव-पूजा होती है । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । जिस स्थानपर बिल्ववन है, वह स्थान वाराणसीपुरी है । जिस स्थानपर पाँच बिल्ववृक्ष होते हैं, वहाँ हर स्वयं विद्यमान होते हैं । जहाँ सात बिल्ववृक्ष होते हैं, वहाँ गौरीशंकर अवस्थान करते हैं । जिस गृहस्थके घरके ईशान कोणमें बिल्ववृक्ष होता है, उस स्थानमें कभी विपद् नहीं आती । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । पूर्वदिशामें बिल्ववृक्ष सुखदायक होता है । दक्षिण दिशामें स्थित बिल्ववृक्ष यमका भय दूर करता है और पश्चिममें बिल्ववृक्ष संततिवर्द्धक है । श्मशानमें, नदीतीरपर, निर्जन मार्गमें अथवा वनान्तरमें श्रीफलवृक्ष-तल सिद्धपीठ है—यह बात देवगण कहते हैं । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । आँगनके बीचमें बिल्ववृक्ष लगाना ठीक नहीं, यदि देवयोगसे हो जाय तो उसकी शिवके समान पूजा करना कर्तव्य है । राम-राम सीताराम । चैत्रादि चार महीने भगवान् शंकरको एक-एक बिल्वपत्र चढ़ानेसे लक्ष धेनुदानका फल होता है । जो मनुष्य मध्याह्नमें बिल्ववृक्षकी प्रदक्षिणा करते हैं, उनको सुमेरुगिरिकी प्रदक्षिणाका फल मिलता है । राम-राम सीताराम । श्रीफलवृक्षको न काटे और न उसकी लकड़ी बलावे । ब्राह्मणके यज्ञके सिवा अन्यत्र जो बिल्ववृक्षको बेचता है, वह पतित हो जाता है । बिल्वकाष्ठका घिसा हुआ चन्दन

जो मस्तकपर धारण करता है, वह व्यक्ति पापी हो या पुण्यात्मा, उसके ऊपर यमका प्रभाव नहीं पड़ता । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । भूमिपर पड़े फलबीज जो पीछे व्यर्थ हो जाते हैं, उनको शंकर मस्तकपर धारण करते हैं । राम-राम सीताराम ।

फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार महीनोंमें जो धर्मात्मा पुरुष बिल्ववृक्षके मूलमें जल डालते हैं, उससे जैसे-जैसे बिल्ववृक्ष स्निग्ध होता है, वैसे-वैसे उसके पितर स्निग्ध होते हैं । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । चैत्र आदि चार महीनोंमें शंकरजीको नवीन बिल्वपत्र अर्पित करनेसे भक्ति-मुक्तिकी प्राप्ति होती है । श्रीभगवान् यह बात कह ही रहे थे कि उसी समय शंकरजी आकर वहाँ उपस्थित हुए । ब्रह्मा और विष्णुने श्रीफलके पत्रके द्वारा शिवकी पूजा की । तत्पश्चात् सब अपने-अपने स्थानको गये । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम ।

हरिदास—बिल्ववृक्षकी महिमा सुनकर मैं धन्य हो गया, पागल बाबा ! आपको प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करता है ।)

पागल—राम-राम सीताराम । मैं भी प्रणाम करता हूँ । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम ।

हरिदास—अब मन्वन्तर और कल्पकी बात कहिये ।

पागल—राम-राम सीताराम । मनुष्यका एक वर्ष देवताओंका एक रात-दिन होता है । वर्षका उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात होती है । देवताओंके कालके अनुसार बारह हजार वर्षोंका चतुर्युग होता है । एकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है और चौदह मन्वन्तरका ब्रह्माका एक दिन होता है । राम-राम सीताराम ।

हरिदास—हमारे कितने वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है ।

पागल—राम-राम सीताराम । मनुष्यके चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है । रात्रिका परिमाण भी यही है । सारांश यह है कि हमारे आठ अरब चौसठ करोड़ वर्षोंका ब्रह्माका अहोरात्र होता है । ब्रह्माके एक दिनका नाम

‘कल्प’ है। इस प्रकारकी गणनामें ब्रह्माकी सौ वर्षकी आयु है।
राम-राम सीताराम ।

हरिदास—पागल बाबा, ऐसे अपार भवसागरमें आठ अरब चौसठ करोड़ वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है। उसका नाम कल्प है ! उसके बाद नयी सृष्टि होती है। चौदह मन्वन्तरमें ब्रह्माका एक दिन होता है न ? ‘कल्प’ कितने हैं ?

पागल—राम-राम सीताराम । तीस कल्प हैं, राम-राम ।

हरिदास—तीस कल्पोंके नाम क्या हैं ?

पागल—राम-राम सीताराम । श्वेतवाराह, नीललोहित, वामदेव, रथान्तर, रौरव, प्राण, बृहत्कल्प, कंदर्प, सद्य, ईशान, व्यान, सारस्वत, उदान, गारुड़ और कौर्म । यह कौर्म कल्प ब्रह्माकी पूर्णिमा है। नारसिंह, समान, आग्नेय, सोम, मानव, वसुमान्, वैकुण्ठ, लक्ष्मी, सावित्री, घोर, वाराह, वैराज, गौरी, माहेश्वर एवं पितृ कल्प, यह अन्तिम ब्रह्माकी अमावास्या है। इस समय ब्रह्माकी आयु ५१ वर्षकी है, श्वेतवाराहकल्प चल रहा है। राम-राम सीताराम ।

हरिदास—मनुओंके क्या नाम हैं ?

पागल—राम-राम सीताराम । स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि—राम-राम सीताराम । इस समय सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। राम-राम सीताराम ।

हरिदास—कहिये, और भी बिल्ववृक्षकी महिमा सुनाइये ।

पागल—राम-राम सीताराम ।

बिल्वमूलमृदा यस्तु शरीरमुपलिम्पति ।

अन्तकालेऽन्तकजनैः स दूरीक्रियते नरः ॥

(श्रीशिवगीता १६।२५)

‘जो बिल्ववृक्षके तलेकी मिट्टी शरीरमें लेप करते हैं, वे देहान्तके समय यमदूतोंद्वारा टाल (छोड़) दिये जाते हैं। यमदूतगण उसकी सीमाके भीतर आ नहीं सकते। राम-राम सीताराम ।

बिल्ववृक्षे तन्मूले वा यो मां पूजयते नरः ॥ ३१ ॥

परां श्रियमिह प्राप्य मम लोके महीयते ।

बिल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्त्रान् विधिना जपेत् ॥ ३२ ॥

एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत् ।

यस्तु बिल्ववने नित्यं कुटीं कृत्वा वसेन्नरः ॥ ३३ ॥

सर्वे मन्त्राः प्रसिद्धयन्ति जपमात्रेण केवलम् ।

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले शिवालये ॥ ३४ ॥

अग्निहोत्रे केशवस्य संनिधौ वा जपेत्तु यः ।

नैवास्य विघ्नं कुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः ॥ ३५ ॥

राम-राम सीताराम । शिवजी कहते हैं कि ‘बिल्ववृक्षके तले या उसके मूलमें जो मेरी पूजा करता है, वह इहलोकमें परम श्री प्राप्त करता है और देहान्त होनेपर मेरे लोकमें पूजित होता है। जो बिल्वमूलमें विधिपूर्वक मेरा मन्त्रजाप करता है, उसका एक ही दिनमें पुरश्चरण हो जाता है। जो मनुष्य बिल्ववनमें कुटी बनाकर नित्य वास करता है, उसको केवल जपके द्वारा सारे मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। पर्वतके शिखरपर, नदीके तटपर, बिल्वके मूलमें, शिवालयमें अथवा केशवके सामने जो जप करते हैं, यक्ष, राक्षस और दानवयोग उसके लिये कोई विघ्न नहीं कर सकते। राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम । उनको कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता। वे शिवसायुज्य प्राप्त करते हैं। राम-राम सीताराम राम-राम सीताराम ।’

श्रीसूक्तमें कहा है—

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो

वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।

तस्य फलानि तपसा नुदन्तु

या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥

‘हे सूर्यके समान कान्तिविशिष्टे ! तुम्हारी तपश्चर्याके द्वारा वनस्पतियोंमें श्रेष्ठ बिल्ववृक्ष आविर्भूत हुआ था। उस बिल्वके फल तुम्हारे अनुग्रहसे मुझमें स्थित दृढत अज्ञान तथा पापादिरूप बाह्य दारिद्र्य एवं दुर्गतिरूपी अलक्ष्मीको दूर करे। राम-राम सीताराम ।

हरिदास—श्रीसूक्त तो वेदमन्त्र हैं, उनमें भी बिल्ववृक्षकी कथा है ?

पागल—राम-राम सीताराम । हाँ, सीताराम । वामन-पुराणमें कात्यायन कहते हैं—बिल्वलक्ष्म्याः करेऽभवत् ॥—बिल्ववृक्ष लक्ष्मीके हाथसे उत्पन्न हुआ। भार्गवपुराण कहता है—

बिल्वाटव्यां महालक्ष्मीरुपास्ते बिल्वनायकम् ।

‘महालक्ष्मीने बिल्ववनमें बिल्वनायककी उपासना की। राम-राम सीताराम ।’

तनुमध्या पुरा बाला नीरातटमुपाश्रिता ।
बिल्वारण्ये तपश्चक्रे लक्ष्मीलोकहितार्थिनी ॥

(कालिकापुराण)

‘प्राचीनकालमें तनुमध्या तरुण-अरुण-श्री लोकहितार्थिनी लक्ष्मीने नीरानदीके तटपर बिल्वारण्यमें वास करके तपस्या की थी । राम-राम सीताराम ।’

हरिदास—तब तो बिल्वमूल तपस्याके लिये उत्तम स्थान है ?

पागल—जय-जय राम सीताराम । हाँ, वह जपके लिये उत्कृष्ट स्थान है । नित्यतन्त्रमें—

शक्तिक्षेत्रे महापीठे बिल्वमूले शिवालये ।

वटेऽश्वत्थे बिल्वमूले रम्भाया विपिने तथा ॥

(समयाचारतन्त्र)

बिल्वमूले नदीतीरे पर्वते शिवसंनिधौ ।

(पुरश्चरणोद्घास)

उद्यानानि विविकानि बिल्वमूलं तटं गिरेः ।

(शारदातन्त्र)

नदीतीरे बिल्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि ।

(मुण्डमालातन्त्र)

राम-राम सीताराम । सुन लिया सीताराम ? बिल्वमूलमें जपकी महिमाकी बात राम-राम ?

हरिदास—खूब सुन लिया । ऐसा तो पहले कभी सुना नहीं था ।

पागल—राम-राम सीताराम । माँ हमारी बिल्ववनमें रहती है ।

उदयादित्यसंकाशां बिल्वकाननमध्यगाम् ।

तनुमध्यां श्रियं ध्यायेदलक्ष्मीपरिहारिणीम् ॥

‘बिल्वकाननके मध्यमें स्थित, अलक्ष्मीका नाश करनेवाली, उदीयमान सूर्यके समान कान्तिवाली, क्षीण-कटि, जगज्जननी लक्ष्मीजीका ध्यान करे । राम-राम सीताराम जय-जय राम सीताराम ।’

हरिदास—क्या बिल्वकाननमें अलक्ष्मी नहीं रहती ?

पागल—राम-राम सीताराम । ‘ना’ सीताराम ।

बिल्वनाथप्रियायास्तु नारायण्यास्तपोवनान् ।

बिल्वारण्यं फलस्यद्य लोकालक्ष्मीनिवृत्तये ॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

राम-राम सीताराम ।

हरिदास—क्या बिल्ववृक्षकी उत्पत्तिकी कथा दूसरे प्रकारकी भी है ?

पागल—राम-राम सीताराम । मैं और कई जानता हूँ । अच्छा सुनो—

विहारश्रममापन्ना देवी गिरिसुता शुभा ।

ललाटफलके तस्याः स्वेदबिन्दुरजायत ॥

स भवान्या विनिक्षिप्ते भूतले निपपात च ।

महातरुणं जातो मन्दरे पर्वतोत्तमे ॥

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

‘सीताराम । विहारजनित श्रमसे गिरिजाके ललाटमें स्वेद उत्पन्न हुआ । भवानीने मन्दर पर्वतपर उसे डाल दिया । उसके द्वारा बिल्ववृक्षकी उत्पत्ति हुई । राम-राम सीताराम ।

हरिदास—तब तो किसी कल्पमें बिल्ववृक्ष जगन्माता दुर्गाके स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ ?

पागल—‘राम-राम सीताराम’ हाँ—सीताराम । अच्छा, अब बिल्वोपनिषद्की बात सुनो ।

हरिदास—बिल्व-उपनिषद् भी है—यह तो मैंने कभी नहीं सुना ।

पागल—राम-राम । सम्पूर्ण उपनिषद् अभीतक कहाँ प्रकाशित हैं ? कितने उपनिषद् हैं—इसको कौन जानता है ? राम-राम सीताराम ।

अथ वामदेवः परमेश्वरं सृष्टिस्थितिलयकारणं उमा-सहितं स्वशिरसा प्रणम्येति होवाच । अधीहि भगनो सर्व-विद्यां सर्वैरहस्यवरिष्ठां सदा सज्जिः पूज्यमानां निगूढाम् । कया च पूजया सर्वपापं व्यपोह्य परात्परशिवसायुज्यमाप्नोति ? केनैकेन वस्तुना मुक्तो भवति । तं होवाच भगवान् सदाशिवः ।

राम-राम सीताराम । पश्चात् वामदेवने सृष्टिस्थितिलयके कारण उमासहित श्रीभगवान् परमेश्वरको प्रणाम करके यह बात कही थी—‘भगवन् ! उस सर्वविद्याका उपदेश दीजिये जो सब प्रकारके गोपनीयोंमें श्रेष्ठ, सतत साधुओंके द्वारा पूज्यमान, निगूढ़—चक्षु आदि इन्द्रियोंसे अगोचर है ? उसे बतलाइये । किस प्रकारकी पूजाके द्वारा सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर मनुष्य परात्पर शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है ? किस एक वस्तुके द्वारा मानव मुक्त होता है ? उनसे भगवान् सदाशिवने कहा था—राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ।

मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः ॥

एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महामुने ।

‘हे महामुनि ! कदापि इसे न कहना, न कहना, न कहना । बिल्ववृक्षको मेरा स्वरूप जानो । विधिपूर्वक एक बिल्वपत्रके द्वारा पूजित होनेपर भी मैं संतुष्ट हो जाता हूँ । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।’ परमेश्वर शिवके इतना कहनेपर उन्होंने प्रणाम करके पुनः कहा—

हे सर्वलोकेश्वर, सत्यज्ञानादि लक्षण भगवन् ! किस प्रकारसे पूजा करनी पड़ती है, यह हे करुणासागर ! आप मुझको बतलाइये । राम-राम सीताराम ।’ वामदेवके पुनः पूछनेपर उनको आलिङ्गन करते हुए शिवजीने कहा—‘हे मुनिसत्तम ! तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये यह बात तुमसे कहता हूँ । तुम मेरे प्रिय बिल्वपत्रके द्वारा मेरी अर्चना करो । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । मेरी पूजा-विधिसे उत्तम द्रव्यसमूह—पत्र-पुष्प-अक्षत तथा दिव्य बिल्वपत्रके द्वारा मेरी सम्यक् रूपसे अर्चना करो । राम-राम सीताराम ।’

बिल्वपत्रं विना पूजा व्यर्था भवति सर्वदा ।

मम रूपमिति ज्ञेयं सर्वरूपं तदेव हि ॥

‘बिल्वपत्रके विना मेरी पूजा व्यर्थ है । बिल्व मेरा रूप है और वही सर्वरूप है । राम-राम सीताराम ।’

हरिदास—श्रुति भी कहती है—बिल्व मेरा रूप है और वही सर्वरूप है ।

पागल—राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । विधिपूर्वक प्रातः स्नान करे । संध्या-गायत्री समाप्त करके भस्म और रुद्राक्ष धारण करे फिर उत्तर दिशाकी ओर भ्रमण करे ।

‘सद्योजातादि०’ मन्त्रोंके द्वारा पुनः-पुनः प्रणाम करके तीन बार प्रदक्षिणा करे और वृक्षमें शिवरूप, देवीरूप, विष्णुरूप, ब्रह्मरूप और सर्वरूपकी विशेषतया भावना करे । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

हरिदास—तब तो बिल्ववृक्ष सर्वदेव-देवी-स्वरूप है !

पागल—‘राम-राम सीताराम’—हाँ । बिल्वपत्रमें वामपत्र ब्रह्मा, दक्षिण पत्र विष्णु और मध्यपत्र शिवात्मक; इन्द्रादि-देवतात्मक है । देवगण और यक्षादि सब वृन्तोपर अवस्थान करते हैं । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

पृष्ठभागोऽमृतं यस्मादर्चयेन्मम तुष्टये ।

उत्तानबिल्वपत्रं च यः कुर्यान्मम मस्तके ॥

मम सायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

क्योंकि बिल्वपत्रके पृष्ठभागमें अमृत है, अतः मेरी तुष्टिके लिये उत्तानभावसे बिल्वपत्रके द्वारा मेरी अर्चना करे । जो मेरे मस्तकपर उत्तान बिल्वपत्र चढ़ाते हैं, वह मेरा सायुज्य प्राप्त करते हैं । इस सम्बन्धमें कोई विचार न करे । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

हरिदास—तब तो बिल्वपत्र शिवके मस्तकपर चित करके देना चाहिये ?

पागल—‘राम-राम सीताराम’—हाँ ! बिल्व त्रिमूर्ति है, त्रिगुण है, अग्निरूप है, ब्रह्मरूप है, कालरूप है, वेदरूप है ।

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्ययोऽहं शिवरूपमस्मि ।

स बिल्वरूपं सगुणात्मरूपं त्रिमूर्तिरूपं शिवरूपमस्मि ॥

राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । ब्रह्मादि देवोंने इसके पृष्ठभागमें अमृत रक्खा है, अतएव सर्वसिद्धि-लाभके लिये उत्तान बिल्वपत्रके द्वारा सर्वदा पूजा करो । हे निष्पाप ! बिल्वपत्रके सिवा तुम्हारे पास और कोई वस्तु नहीं है । इसलिये सर्व प्रयत्नसे बिल्वपत्रोंके द्वारा ही मत्त अर्चना करो । जो उत्तान बिल्वपत्रके द्वारा मेरे मस्तकपर पूजा करता है, वह इस लोकमें अखिल सुखको प्राप्त होता है तथा देहान्त होनेपर वह महावीर पुनर्जन्मविवर्जित होकर मेरे पुरमें निवास करता है । राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम ।

हरिदास—बिल्वपत्रके द्वारा शिवपूजाका फल तो बड़ा भारी है । मैं नहीं जानता था कि इतनी सहजमें शिवकृपा प्राप्त करनेका उपाय मनुष्यको प्राप्त है ।

पागल—राम-राम सीताराम जय जय राम सीताराम । और सुनो—

सोदकैर्बिल्वपत्रैश्च यः कुर्यान्मम पूजनम् ।

मम सांनिध्यमाप्नोति प्रमथैः सह मोदते ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।

बिल्वपूजनतो लोके मत्पूजायाः परा नहि ॥

‘जलसहित बिल्वपत्रोंके द्वारा जो मेरी पूजा करता है, वह मेरे सांनिध्यको प्राप्त होता है तथा प्रमथगणोंके साथ आनन्दसे अवस्थान करता है । मैं भुजा उठाकर सत्य, सत्य, पुनः सत्य कहता हूँ—जगत्में बिल्वपत्रसे पूजाकी अपेक्षा मेरी श्रेष्ठ पूजा और कोई नहीं है । राम-राम सीताराम ।

हरिदास—शिवजी बिल्वपत्रकी प्रशंसा सौ मुखसे करते हैं !

पागल—राम राम सीताराम । सुनो शिवजी श्रीरामसे कहते हैं—
उत्तानभावसे तुम मेरे मस्तकपर बिल्वपत्र चढ़ाओ । मोक्षमें,
अमृतमें डूबे रहोगे । तुमको मैं समस्त काम्य फल प्रदान करूँगा ।

येन केन प्रकारेण बिल्वकेनापि मां भज ।

तीर्थदानतपोयोगो स्वाध्याया नैव तत्समाः ॥

बिल्वं विधानतः स्थाप्य वर्द्धयित्वा च तद्वलैः ।

यः पूजयति मां भक्त्या सोऽहमेव न संशयः ॥

राम-राम सीताराम । जिस किसी प्रकारसे बिल्वपत्रके द्वारा मेरी
पूजा करो । तीर्थ, दान, तपस्या, योगाभ्यास तथा स्वाध्याय उसकी
समानता नहीं कर सकते । राम-राम सीताराम जय जय राम
सीताराम । विधिपूर्वक बिल्ववृक्षको लगाकर जो उसको बढ़ाते

हैं और उसके पत्रोंके द्वारा जो भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं,
वे मैं ही हूँ—इस सम्बन्धमें कोई संशय नहीं है । राम-राम
सीताराम जय जय राम सीताराम । सुन लिया 'सीताराम' !

हरिदास—केवल सुना ही नहीं, कृतार्थ हो गया । इतने
दिनोंके बाद यह ज्ञात हुआ कि बिल्वपत्रके द्वारा शिवपूजा
करना और बिल्ववृक्षके नीचे रहना संसाररूप सागरको पार
करनेका उपाय है । आज तुम्हारी कृपासे यह ज्ञान हुआ ।
पागल बाबा, तुम मेरे गुरु हो । तुमको प्रणाम ।

पागल—राम-राम सीताराम । तुम भी मेरे गुरु हो । तुमको
प्रणाम । इतना कहकर पागल 'श्रीराम जय राम जय राम'
कहते, थेड़-थेड़ करके ताली बजा-बजाकर नाचने लगे ।

वेदोंमें अद्वैतवाद

(लेखक—श्रीश्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि)

जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्यद्वारा प्रतिपादित अद्वैत-
वादका सिद्धान्त कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है, अपितु उनसे
सहस्रों वर्षों पूर्व ही उपनिषदोंमें इस सिद्धान्तका ऋषियोंने
सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन किया था । शंकराचार्य भी इस बातको
स्वीकार करते प्रतीत होते हैं कि उनके द्वारा प्रतिपादित
सिद्धान्त मुख्यतः उपनिषदोंपर ही आधारित हैं; क्योंकि वे
अपने भाष्योंमें स्थल-स्थलपर उपनिषदोंके उद्धरण देकर अपने
सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं । उपनिषदोंके पर्यालोचनसे भी
यह बात सिद्ध होती है कि उपनिषदोंके अंदर अद्वैतवादके
सिद्धान्त बीजरूपमें निहित थे, जिनको विस्तृत रूप देकर
शंकराचार्यने इसको दर्शनकी एक भिन्न और स्वतन्त्र शाखा-
का रूप दिया । शंकराचार्यने अपने भाष्यमें अपने सिद्धान्तों-
की पुष्टिके लिये केवल उपनिषदोंके ही उद्धरण प्रस्तुत किये हैं;
इससे कतिपय विद्वान् यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शंकराचार्यने
वेदोंका अध्ययन नहीं किया था । पर मेरे विचारसे शंकराचार्य-जैसा
संस्कृतका प्रकाण्ड विद्वान् वेदाध्ययनसे अछूता रह जाय, यह बात
कुछ मान्य नहीं हो सकती । उन्होंने जो केवल उपनिषदोंके ही प्रमाण
दिये, इसका एकमात्र कारण यही था कि उस समय
उपनिषद् भी वेदके नामसे पुकारे जाते थे । इसके अतिरिक्त
कुछ विद्वानोंका यह भी मत है कि वेदोंमें अद्वैतवादके
प्रतिपादक मन्त्रोंका नितान्त अभाव है । पर इस बातकी भी
सत्यता कितने अंशतक है, यह एक जिज्ञासु उस समय जान

सकता है, जब वह अपने दुराग्रहको छोड़कर वेदमन्त्रोंका
विवेचन करे । अन्यथा यदि वह पहलेसे ही यह धारणा बना
लेगा कि वेदोंमें अद्वैतके प्रतिपादक मन्त्र हैं ही नहीं, तो
वह अनेकशः वेदोंका आलोडन करनेपर भी उन मन्त्रोंके, जो
अद्वैतवादके प्रतिपादक हैं, अर्थोंको जाननेमें असफल
रहेगा ।

उपनिषद् (वेदान्त)

उपनिषद् वेदोंके अन्तिम भाग हैं, इसी कारण उन्हें
वेदान्त भी कहा जाता है । सारे वेदोंका आध्यात्मिक सारांश-
रूप उपनिषद् भाग है, अर्थात् वेदोंके सम्पूर्ण आध्यात्मिक
तत्त्वज्ञानको ऋषियोंने उपनिषदोंमें संक्षिप्त रूपमें रखा है ।
इससे यह सिद्ध होता है कि जो कुछ उपनिषद्द्वारा
प्रतिपादित सिद्धान्त हैं, वे वेदमें भी अवश्य होने चाहिये ।
अन्यथा उपनिषद्के ऋषियोंको वेदद्वारा अप्रतिपादित
सिद्धान्तोंका ज्ञान होना असम्भव था ।

उपनिषद् स्पष्टरूपसे ही अद्वैतवादके पोषक हैं और
उनका यह पोषण केवलमात्र वेदोंमें बीजरूपमें अवस्थित
अद्वैतवादके सिद्धान्तोंको विस्तृतरूप देना ही है । प्रथम हम
उपनिषद्-प्रतिपादित अद्वैतके सिद्धान्तोंपर विचार करते हैं ।

उपनिषदोंमें अद्वैतवादका स्वरूप

उपनिषदोंमें प्रायः सभी सिद्धान्तोंके दर्शन होते हैं,

उनमें त्रैलोक्यवाद (ईश्वर, जीव और प्रकृति—तीनोंकी पृथक् और नित्य सत्ता), द्वैतवाद (केवल ईश्वर और जीवकी ही सत्ता) आदिके भी प्रतिपादक वचन हैं । यही कारण है कि रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य तथा ब्रह्मसूत्र (वेदान्त या उत्तरमीमांसा-दर्शन) के अन्यान्य भाष्यकारोंने भी उपनिषदोंको ही अपने सिद्धान्तोंका आधार बनाया ।

सृष्टिसे पूर्व प्रलयावस्थाका वर्णन उपनिषदोंमें कई जगहों पर आया है । पर उनमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रायः उपनिषदोंने उस समय केवल एक आत्माकी ही सत्ता स्वीकार की है । 'आत्मा ही सबसे पहले विद्यमान था' अथवा केवल 'एक सत् ही सृष्टिके पूर्व था' और उसीसे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई । यह सारी सृष्टि उत्पन्न होनेके बाद उसी आत्माके आधारपर रहती है और प्रलयावस्थामें उसी आत्मामें विलीन हो जाती है ।^१ इस प्रकार उपनिषदें प्रलयावस्थामें उस एक ब्रह्म या आत्माकी सत्ताके अतिरिक्त किसी अन्यकी सत्ता स्वीकार नहीं करतीं । कई उपनिषद्के वचन तो यहाँतक बढ़ जाते हैं कि इस सृष्टिकी अवस्थामें भी इस जगत्की वास्तविक और पृथक् सत्ता स्वीकार न करते हुए उसी आत्माका रूप मानते हैं और इस रूपमें ब्रह्म या आत्मा इस जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है । 'जैसे मकड़ी अपने शरीरसे इच्छानुसार जाला बुनती है और फिर उसको अपने अंदर समेट भी लेती है, उसी प्रकार यह जगत् भी उस अभिन्ननिमित्तोपादान रूप ब्रह्मसे होता है और फिर उसीमें विलीन भी हो जाता है' ।^२ प्रश्नोपनिषद्के अनुसार ब्रह्मके अंदर सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा हुई और उसने तपसे रयि और प्राण या भोग्य और भोक्ताके रूपमें एक जोड़ेको उत्पन्न किया, जिससे इस सृष्टिका विस्तार किया ।^३ 'उसने इच्छा की मैं बहुत-सी प्रजाओंको उत्पन्न करूँ ।'^४ उसने

तप किया और उस तपसे यह सृष्टि पैदा की तथा इस सृष्टिको उत्पन्न करके स्वयं भी उसमें प्रविष्ट हो गया ।^५ और वही 'इन्द्र इस सृष्टिमें अनेक रूपवाला होकर प्रकाशित हो रहा है' (इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते) । इसी प्रकार और भी अनेक वचन अद्वैतवादके पोषक हैं ।

जीवके विषयमें उपनिषदें अपने मन्तव्योंको अग्नि और स्फुलिंगके उदाहरणद्वारा प्रकट करती हैं । जिस प्रकार स्फुलिंगकी अग्निसे पृथक् सत्ता नहीं है, अपितु अग्निका एक अंश स्फुलिंग या चिनगारी है, उसी प्रकार जीवात्मा भी उस ब्रह्मसे पृथक् सत्तावान् न होकर उसीका एक अंश है । अथवा समुद्रमें उठती हुई तरङ्गें जैसे समुद्रसे पृथक् नहीं हैं, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्मसे पृथक् नहीं है । इसके अतिरिक्त 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि वाक्य स्पष्टतया जीव-ब्रह्माद्वैतके प्रतिपादक हैं ।

इस प्रकार यहाँ थोड़ेसे शब्दोंमें उपनिषद्में प्रतिपादित अद्वैतवादके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शनमात्र कराया गया है । अब वेदोंमें इस वादका स्वरूप देखते हैं ।

वेदोंमें अद्वैतवादका स्वरूप

जैसे कि हम पहले कह आये हैं, उपनिषद् वेदान्त होनेके कारण उपनिषत्-प्रतिपादित सभी सिद्धान्तोंका तत्त्व वेदमें होना चाहिये ।

वेदोंमें अद्वैतवादविषयक मन्त्रोंकी विवेचनाके पूर्व यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि वेदोंमें कई स्थलोंपर अद्वैतवादको एकात्मवाद या एकत्ववादके नामसे भी कहा गया है । केवल नामकी भिन्नताके अतिरिक्त इनके आन्तरिक तत्त्वज्ञानमें कोई विशेष भेद नहीं है ।

सृष्टिके उपादानकारणभूत तत्त्वोंका वर्णन करते हुए यजुर्वेदका एक मन्त्र उन सभी तत्त्वोंको ब्रह्म ही बताता है । वही ब्रह्म अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, जल और प्रजापति है^६ । किन्हीं वेद-भाष्यकारोंके अनुसार इसका अर्थ है कि इन सब तत्त्वोंके गुण उस ब्रह्ममें हैं; पर यहाँ आये हुए 'तत्+एव' शब्द उनके इस अर्थको अमान्य कर देते हैं । 'तत्+एव' वह ही अग्नि आदि है । यहाँ 'ही'

१. आत्मा वा इदमेकमग्र आसीत् । (ऐत० उ० २।४।१)

२. सदेवेदमग्र आसीत् । (छा० उ० ६।२।१)

३. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति पश्यन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ।

४. यथोर्णनाभिः सृजते, गृह्णते च, ... तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।

५. प्रजाकामो वै प्रजापतिः, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा, स मिथुनमुत्पादयते, रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ प्रश्न० उ० प्रथम प्रश्न ४ ।

६. तैत्ति० आ० ८ । ६ तथा शतैष्य ब्रा० १३।७।१

७. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(यजु० ३२।१)

शब्द एक ऐसा आ पड़ा है, जिसके कारण इस मन्त्रका अन्य अर्थ करनेका अवकाश ही नहीं है। 'उसको एक होते हुए भी विद्वान् इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि नामोंसे पुकारते हैं'। यजुर्वेदके ४० वें अध्यायमें भी ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जो अद्वैतवाद अथवा एकात्मवादका वर्णन करते हैं। 'वायु, प्राण तथा यह भस्म होनेवाला शरीर—सब अमृत अर्थात् ब्रह्म है'। यहाँ 'अथ' शब्द आया है, जिसके अनेक अर्थ विद्वानोंने निश्चित किये हैं—

मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येष्वथो अथः ।

'अथ'शब्द मङ्गल, अन्तर, आरम्भ, प्रश्न और सबके अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। पर यहाँ इस मन्त्रके अर्थके प्रसङ्गमें 'अथ' शब्द 'कात्स्न्य' (सब) अर्थके अतिरिक्त और किसी अर्थमें प्रयुक्त नहीं हो सकता। यहाँ 'अथ' शब्द न मङ्गलार्थक है न अन्तर्भावार्थक है, न आरम्भार्थक और न प्रश्नार्थक; अतः इसे केवल कात्स्न्यार्थक मानकर इस मन्त्रका यही अर्थ करना पड़ेगा कि 'यह वायु और शरीरादि सब अमृत अर्थात् ब्रह्म है'। इसी अध्यायके ६ और ७ मन्त्र भी एकात्मवादके द्योतक हैं। 'जो सब प्राणियोंको एकात्मकी दृष्टिसे देखता है, उसे किसी प्रकारका संशय, शोक या मोह—कुछ भी नहीं होता।' ^{३०}

सृष्टिके पूर्वकी अवस्थाके वर्णनमें भी वेद और उपनिषद् दोनों समान हैं। उपनिषद्के समान ही वेद भी प्रलयावस्थामें केवल एक आत्माकी ही सत्ता स्वीकार करता है। उस समय आत्माके अतिरिक्त जीव, प्रकृति या परमाणु—किसीकी भी सत्ता नहीं थी—'उस समयकी अवस्था वायुरहित थी, केवल वह एक ही था। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं था।' ^{३१} यह ऋग्वेदके ह्यप्रसिद्ध नासदीयसूक्तका मन्त्र है। इस सूक्तपर कई विद्वानोंने अपने-अपने भाष्य किये हैं, उनमें कड़्योंने यह भी स्वीकार किया है कि प्रलयावस्थामें केवल परमात्मा था और इसके साथ उसकी अपनी शक्ति थी, अन्य कुछ भी—यहाँ तक कि अणु या परमाणु भी नहीं थे।

जीवके विषयमें भी वेद और उपनिषदोंका वर्णन

अधिकांशमें समान है। ऋग्वेदका यह मन्त्र जीवात्मा और परमात्माके अंशान्शिभावको प्रकट करता है—

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद् ऋषिर्होता न्यसीदत् पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवर्षा आ विवेश ॥ ^{३२}

इस मन्त्रपर सायणका भाष्य निम्न प्रकार है—'जो परमेश्वर प्रलयकालमें पृथिव्यादि सात लोकोंको इकट्ठा कर लेता है तथा जो हमारा पिता है, वह सृष्टिकी इच्छासे अथवा जगत् के भोगकी आकाङ्क्षासे अपने पारमार्थिक रूपको छिपाकर अपने द्वारा उत्पन्न किये प्राणियोंके हृदयमें जीवरूपसे प्रविष्ट होता है।' इस प्रकार जीवविषयक सिद्धान्त भी दोनों जगह लगभग समान हैं।

वैदिक और शंकर सिद्धान्तोंमें भेद

उपर्युक्त वेद और शंकराचार्यद्वारा (शंकराचार्य और उपनिषदोंके सिद्धान्त समान हैं) प्रतिपादित अद्वैतवादके सिद्धान्तोंमें समानता होते हुए भी वे कुछ अंशोंमें भिन्न हैं। शंकराद्वैतका ब्रह्म निष्क्रिय, निर्गुण है; पर वेदका ब्रह्म क्रियावान् और अनेक गुणोंसे युक्त है। शंकराचार्यके अनुसार ब्रह्म उदासीन है, पर मायाप्रतिबिम्बित ब्रह्म परमात्माके रूपमें परिणत होकर इस सृष्टिको उत्पन्न करता है। इस प्रकार आचार्य शंकरके मतसे ब्रह्म और परमात्मा भिन्न-भिन्न हैं; पर वेदके अनुसार ब्रह्म और परमात्मा भिन्न-भिन्न नहीं, अपितु एक हैं। भगवान् शंकराचार्यके अनुसार जगत्में दुर्गुणोंका आविर्भाव ब्रह्मकी शक्ति मायासे हुआ है; इस प्रकार दुर्गुणोंके लिये भी परम्परया ब्रह्म उत्तरदायी है; पर वैदिक सिद्धान्तानुसार दुर्गुणोंका कारण जीवात्मा स्वयं है, परमात्मा या ब्रह्मसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

इस प्रकार वेदोंमें भी अद्वैतवादका तत्त्व विद्यमान है, जिस तत्त्वको आगे उपनिषदोंमें कुछ त्वस्तुत किया गया है और शंकराचार्यके भाष्योंमें यह तत्त्व अपने अधिकाधिक विस्तृत रूपको प्राप्त कर चुका है।

८. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमादुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अ० यं मातरिश्वा न आहुः ॥
(ऋ० १ । १६४ । ४६)

९. वायुरनिलममृतमथैदं भस्मान्तः शरीरम् । (यजु. ४० । १५)

१०. यजुर्वेद ४० । ६-७ ।

११. आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद् नान्यत् परं किंचनास । (नासदीयसूक्त. ऋ० १० । १२०)

१२. ऋ. १० । ८१ । १ ।

मधुर

श्रीमती राधाजी यमुनातटपर (एकान्तमें) बैठी हुई
मन-ही-मन यह विचार कर रही थीं कि मेरे कारण
प्रियतम श्यामसुन्दरको कितना अपार कष्ट होता है। वे
अपने सभी आवश्यक कार्योंका परित्याग करके मेरे समीप
चले आते हैं। अत्यन्त सर्दी-गरमी और वर्षा सहन
करते हैं। (मेरे सिवा) कहीं कुछ भी राग नहीं
रखते। (उनके इस प्रकारके प्रेमाचरणको देखकर)
बड़े-बड़े तर्कशील, सिद्धान्तवादी, तत्त्वज्ञानी, सिद्ध और
विदेह लोग उनकी निन्दा करते और उनकी भगवत्तापर
संदेह करके उनका खण्डन करते हैं। (आश्चर्य
है—) जो सब लोकोंके महान् ईश्वर हैं, जो सबके
एक मात्र आधार हैं, जो सर्वातीत तथा सर्वमय हैं और
जिनसे (सबका अनन्त ब्रह्माण्डोंके चराचरका) विस्तार
होता है, उन्हीं परात्पर प्रभुका मुझसे कैसा पावन मोह
है, जो एक पलके लिये भी कभी मेरे सर्वथा बिछोहको
किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकते।

बैठी राधा थीं—यमुना-तट
मन-ही-मन कर रहीं विचार।
मेरे कारण प्रियतमको होता
है कितना कष्ट अपार ॥
आते मेरे पास, सभी
आवश्यक कार्योंका कर त्याग।
सहते हिम-आतप-वर्षा अति,
रखते नहीं कहीं कुछ राग ॥
बड़े-बड़े तार्किक, सिद्धान्ती,
तत्त्वज्ञानी, सिद्ध, विदेह।
निन्दा करते, खण्डन करते
कर भगवत्तामें संदेह ॥
महान् ईश्वर सब लोकोंके,
सबके एकमात्र आधार।
सर्वातीत, सर्वमय, जिनसे
सबका होता है विस्तार ॥

वही परात्पर प्रभु करते हैं,
मुझमें कैसा पावन मोह !
नहीं पलक भर भी सह सकते
मेरा कभी नितान्त बिछोह ॥

वे परम प्रेमस्वरूप, प्रेमके श्रेष्ठ रसिक, प्रेमाधार
(प्रभु) प्रेमविवश होकर मेरे मनको तुष्ट करनेके लिये
सभी कुछ (बुरा-भला) अङ्गीकार कर लेते हैं। कहीं
मैं नगण्य, तुच्छ, रूप-गुणोंसे सर्वथा रहित और दोषोंकी
घर और कहीं समस्त अप्रतिम सद्गुणोंके तथा शोभा-
सौन्दर्यके भंडार वे (श्यामसुन्दर) ! पर मेरे दोषोंकी
ओर मेरे प्रियतमकी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। (उन्हें
तो) यही लगता है कि मुझमें उनको सुखी करनेवाली
सभी गुणावलियाँ ढेर-की-ढेर स्थान पा रही हैं। इसीसे
वे अपनी सारी भगवत्ताको भूलकर (मेरे लिये) निन्दा,
कष्ट और कलङ्कका वरण करते हैं। कभी तनिक-सी भी
मेरे मुखपर म्लानता देख पाते हैं तो वे आतुर होकर
तुरंत मुझे अपने अङ्कमें भर लेते हैं। न तो तनिक भी
लज्जा करते हैं न तनिक संकोच ही। कोई उन्हें भला
कहे या बुरा, वे कभी उसपर ध्यान ही नहीं देते—

परम प्रेमसमय, प्रेम-रसिक-वर
प्रेमविवश वे प्रेमाधार।
मेरे मनके तोष-हेतु वे
करते सब कुछ अङ्गीकार ॥
कहाँ नगण्य, तुच्छ मैं रूप-
गुणोंसे विरहित दोषागार।
कहाँ सर्व सद्गुण-सुषमा-
सौन्दर्य अप्रतिमके भंडार ॥
मेरे दोषोंपर प्रियतमकी
नहीं कदापि दृष्टि जाती।
लगता, उनके सुखकी मुझमें
सब गुणराशि स्थान पाती ॥

सब भगवत्ता भूल, वरण
करते वे कुत्सा, कष्ट, कलङ्क ।
देख तनिक मुख ग्लान तुरत
हो आतुर वे भर लेते अङ्क ॥
नहीं तनिक भी लज्जा करते,
करते नहीं तनिक संकोच ।
ध्यान नहीं देते कदापि वे,
कोई कहे भला या पोच ॥

वे (ही) मेरे सर्वस्व हैं, वे ही मेरे लोक-परलोक
हैं और वे ही मेरी गति, मति, प्रीति, मन और जीवन
हैं एवं वे ही (मेरे जीवनके) एकमात्र प्रकाश हैं ।
मेरी इस बाह्याभ्यन्तर स्थितिको वे पूर्णरूपसे जानते हैं,
इसीलिये वे भगवान् मुझपर सदा न्यौछावर रहते हैं ।
(मेरी यह स्थिति ही उनके कष्ट-कुत्साका कारण है । मैं
चाहती हूँ कि मुझमें ऐसी कोई बात रहे ही नहीं, जिससे
उन प्रियतमको निन्दा-दुःख सहना पड़े; पर क्या करूँ,)
किसी प्रकार भी, क्षणभरके लिये भी मैं इस स्थितिका
त्याग नहीं कर सकती । (एकमात्र उन प्रियतमके
अतिरिक्त मैं किसीको भी किसी अंशमें भी न अपना
सर्वस्व मान सकती हूँ और न गति, मति, प्रीति तथा
प्रकाश ही;) परंतु (इसलिये) मैं उन्हें निन्दा तथा
कष्ट पाते देखती हूँ तो मेरी छातीमें (भीषण) आग
जलने लगती है । मैं जानती हूँ (मेरी इस स्थितिके
कारण) मुझे अपार सुखी देखकर उन्हें अत्यन्त सुख
होता है; पर मुझे लगता है कि वे मेरे प्राणाधार (मेरे
लिये) नित्य निरन्तर अत्यन्त कष्ट सहन करते हैं । अब
मैं कैसे क्या करूँ, जिससे प्रियतमका यह कष्ट तुरंत
मिट जाय, मेरे कारण होनेवाले तमाम कष्टोंका अन्त
हो जाय ।

मेरे वे सर्वस्व एक ही,
वे ही मेरे इह-परलोक ।

गति-मति-रति, मन-जीवन वे ही,
एक मात्र वे ही आलोक ॥
इस मेरी बाह्याभ्यन्तर स्थिति-
का उनको है पूरा ज्ञान ।
इसीलिये वे मुझपर सदा
निछावर रहते हैं भगवान् ॥
कैसे भी मैं, क्षण भर भी,
इस स्थितिका त्याग न कर पाती ।
सहते उन्हें देख, पर, निन्दा-
श्रम, जलती मेरी छाती ॥
यद्यपि उनको होता अति सुख
मुझे देखकर सुखी अपार ।
पर, मुझको लगता, वे सहते
कष्ट नित्य अति प्राणाधार ॥
कैसे, मैं क्या करूँ, मिटे
जिससे यह प्रियका कष्ट तुरंत ।
मेरे कारण होनेवाले
कष्टोंका हो कैसे अंत ॥

इस दुश्चिन्ताकी ज्वालासे उनका हृदय जल उठा,
वे अचेत हो गयीं और उनका वह सौन्दर्यका धाम स्वर्ण-
शरीर मलिनमुख होकर भूमिपर गिर पड़ा । प्रियतम
श्यामसुन्दर वहीं खड़े थे, श्रीमतीको गिरते देखते ही
उन्होंने तुरंत अपनी गोदमें ले लिया । वे अपने हाथों
उनका सिर सहलाने लगे और प्रमुदित मनसे उनका
मुखचन्द्र निरखने लगे—

इस दुश्चिन्ताकी ज्वालासे
जला हृदय, वे हुई अचेत ।
स्वर्ण-देह वह पड़ी भूमिपर
मलिन-वदन सौन्दर्य निकेत ॥
प्यारे वहीं खड़े थे, गिरते
देख तुरंत ले लिया गोद ।
सिर सहलाने लगे स्व-कर
मुखचन्द्र देखने लगे समोद ॥

गीताका सार

(लेखक—श्रीब्रिजलालजी बियाणी)

विश्वसाहित्यमें गीता एक महान् ग्रन्थ है। भारतीय जीवन-प्रासादकी तो वह गहरी नींव है। किसी भी ग्रन्थका सार या तात्पर्य निकालना हो तो नीचे लिखे श्लोकमें वर्णित सात साधनोंसे उसका परीक्षण करना आवश्यक होता है—

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।

अर्थवादोपपत्ती च लिङ्ग तात्पर्यनिर्णये ॥

इन सातोंमेंसे 'उपक्रमोपसंहारौ' यानी ग्रन्थका आरम्भ और अन्त—ये दो प्रधान साधन हैं। ग्रन्थकार अपने मनमें एक विशिष्ट हेतु रखकर ग्रन्थ आरम्भ करता है और उस हेतुकी सिद्धिमें ग्रन्थ समाप्त कर देता है। अतः आरम्भ और अन्त—इन दोनोंमें ही ग्रन्थके सार या रहस्यका सच्चा अवलोकन है। आरम्भ और अन्तका सम्पूर्ण समन्वय ही ग्रन्थकी सफलता और लेखककी कलाकृतिका सर्वश्रेष्ठ परिपाक है।

गीताके आरम्भका श्लोक है—

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥

गीताका अन्तिम श्लोक है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

गीता भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद है। पर आरम्भ और अन्तिम दोनों श्लोक अन्य व्यक्तियोंके मुखसे कहलाये गये हैं—आरम्भका श्लोक धृतराष्ट्रद्वारा और अन्तिम श्लोक संजयद्वारा। इस ग्रन्थकी कलात्मकताका यह श्रेष्ठ नमूना है कि उसका आरम्भ और अन्त ग्रन्थके मुख्य पात्रोंद्वारा न होकर अन्योद्वारा हुआ है।

गीताके आरम्भिक श्लोकके प्रथम दो शब्द ही प्रधानतः महत्वपूर्ण हैं तथा सम्पूर्ण गीताके लेखनका संकेत उनमें पाया जाता है।

आरम्भ है 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'। कौरवोंने पाण्डवोंका राज्य अपहरण किया और उसका यत्किंचित् भी भाग समझदारीसे पाण्डवोंको लौटानेसे इन्कार कर दिया, तब पाण्डवोंके लिये सिवा युद्धके दूसरा मार्ग ही न रहा। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डव-वनवास तथा अज्ञातवासकी प्रतिज्ञा पूरी कर आनेके पश्चात् उनकी राज्यप्राप्तिकी न्याय्य माँग प्रतिपादित करनेके हेतु कौरवोंके पास जाकर न्यायकी बुनियादपर उनका मतपरिवर्तन करनेकी चेष्टा की, पर कौरवोंने एक न मानी। इसपर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि न्याय्य माँग यदि समझदारीसे नहीं निपटी, तब क्या किया जाय? न्याय्य माँग त्याग दी जाय तो जीवनमें कायर और अनुचित कार्य होता है और माँग प्राप्त करनेका प्रयत्न सिवा संघर्षके और कोई बचता नहीं। इस परिस्थितिमें पाण्डवोंने संघर्ष अर्थात् युद्धका निर्णय किया। अतः पाण्डवोंका कुरुक्षेत्र यानी युद्ध धर्मयुद्ध था। इसीलिये गीताका आरम्भ है—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'। यह युद्ध केवल युद्ध नहीं है, पर धार्मिक युद्ध है।

उपर्युक्त घटनाका अर्थ कि जीवनकी किसी भी अवस्थामें जब संघर्ष होनेकी सम्भावना हो, तब पहले सामञ्जस्यका या नीतिका अवलम्ब किया जाय, न्यायसे समझाया जाय और हमारी माँग न्याय्य है, यह प्रतिपादित किया जाय। योग्य मार्ग या व्यवस्था तो यही है कि जिसकी जो न्याय्य माँग है, वह उसे मिले। जिस समय संसारमें यह व्यवस्था हो जायगी कि जिसका जो हक है वह उसे प्राप्त हो जाय, तभी संसारमें सच्ची शान्ति प्रस्थापित हो सकेगी या युद्धका अन्त हो सकेगा। परंतु न्याय किसकी ओर, इस सम्बन्धका निर्णय करना कभी-कभी असम्भव हो जाता है और ऐसी अवस्थामें संघर्षका जन्म होता है। न्यायका अनुभव होनेपर भी उसे स्वीकार

करनेकी प्रवृत्ति जहाँ नहीं होती, वहाँ भी संघर्ष जन्म लेता है। गीताकी स्थिति दूसरे प्रकारकी है।

जिस युद्धके पीछे न्याय और धर्म है, वही युद्ध क्षम्य हो सकता है। अतः मानव-समाजके लिये गीताके प्रथम श्लोकका संकेत है कि हर संघर्ष धर्मकी बुनियादपर उत्पन्न हो और इसीलिये कुरुक्षेत्रको धर्मक्षेत्र कहा गया है। इस प्रकार गीताके प्रथम श्लोकमें मानव-समाजकी शान्तिका श्रीगणेश है तथा युद्धके औचित्यकी बुनियाद।

गीताका अन्तिम श्लोक है—

यज्ञ योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीविजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम॥

संघर्ष या युद्ध आ ही जाय और उसे झेलना ही पड़े तो विजय किसकी ओर रहेगी, इसका दिग्दर्शन इस अन्तिम श्लोकमें है। इस श्लोकका निर्णय है कि जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धरी पार्थ हैं, वहाँ विजयादि सब है। यद्यपि योगेश्वरसे व्यक्तिगत श्रीकृष्णका अर्थ है और धनुर्धरी पार्थ अर्जुन है, तब भी हमें व्यक्तियोंको त्याग योगेश्वर तथा धनुर्धरी—इन दो शब्दोंका भावार्थ निकालना है। 'योगेश्वर'का अर्थ है 'योगकी उच्चतम सीमा' और धनुर्धरी है 'शारीरिक बलका प्रतीक'। गीतामें योगकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

'योगः कर्मसु कौशलम्।' जिस किसी भी कामको करना हो, उसे कुशलताके साथ करना—इसीका नाम योग है। अतः युद्धमें या जीवन-संघर्षमें जिस किसी कार्यको करना है, उसे कुशलताके साथ करनेमें ही विजयकी सम्भावना है। पर केवल कुशलता कोई अर्थ नहीं रखती, जब कि उस कुशलताका कोई आधार न हो। धनुर्धरी यानी बल कुशलताका आधार है। तब इस श्लोकमें जीवनके दो बलोंका संकेत है—एक शारीरिक या शक्तिरूपी तथा दूसरा यौगिक—आध्यात्मिक। दोनों बल

परस्परावलम्बी हैं। योग बिना बलके सहारे पङ्हु है तथा बलको योग या कुशलताका आधार आवश्यक है।

महाभारतके सभापर्वमें कहा गया है—

अन्धं बलं जडं प्राहुः.....।

बल अंधा और जड है। उसे मार्ग दिखलानेके लिये योगकी आवश्यकता होती है। बलका अन्धत्व और जडता योगद्वारा क्रियाशील तथा दृष्टिपूर्ण बन जाते हैं।

सभापर्वमें ही जरासंधके वधके समयके प्रसङ्गको लेकर कहा गया है—'मयि नीतिर्वलं भीमे'। श्रीकृष्ण कहते हैं, मेरे पास नीति है और भीमके पास बल। अर्थात् युक्ति और शक्ति—इन दोनोंके योग्य उपयोगमें ही विजय-प्राप्ति हो सकती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन युद्धकी स्थितिको लेकर किया गया है और उस दृष्टिसे गीताका सार वर्णित है; पर गीता केवल युद्धके लिये नहीं है। वह मानव-व्याप्त सिद्धान्तोंका महासागर है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उसका मार्गदर्शन है। वह व्यावहारिक जीवनकी भी मार्गदर्शिका है। अतः उसका यह सार जीवनके हर क्षेत्रमें उसी प्रकार उपयोगी है, जिस प्रकार युद्धके क्षेत्रमें। गीताकी यही महानता है कि वह जीवनके समस्त क्षेत्रोंको स्पर्श करती है और उन्हें आप्लावित कर देती है।

मानवका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय है। विभिन्न संघर्षोंने मानव-जीवनको व्याप लिया है। यदि यों कहा जाय तो अयोग्य न होगा कि संघर्ष ही जीवन है। संघर्षहीन जीवनका विनाश भले ही न हो, पर वह निरर्थक अवश्य है। मनुष्यका आन्तरिक संघर्ष अपनी बलवान् इन्द्रियोंसे है और बाह्य संघर्ष प्रकृतिसे। मानव-मानवमें भी संघर्ष है। वास्तवमें मानवके चारों ओर संघर्षका विराट् स्वरूप विद्यमान है। समस्त संघर्षोंमें विजय-प्राप्ति—यही जीवनकी सफलता या अन्तिम ध्येय है।

गीता समस्त संघर्षोंमें मार्गदर्शक है और ऊपर बताया

सार जीवनके संघर्षमय तो 'धर्मक्षेत्र, कु

हर संघर्ष होती है।

श्रीम

सधाका

स्तुति

सधा—

लिये

तृप्तिके

अर्थमें

संयु

शक्ति

है—

उ

वि

है

सार जीवनके हर क्षेत्रमें उपयोगी है। जीवनका हर कार्य संघर्षमय तो हो, पर वह न्याय्य हो; तभी जीवन 'धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र' बना रह सकता है।

हर संघर्षकी विजयके लिये योग तथा बलकी आवश्यकता होती है। विभिन्न क्षेत्रोंमें बलके भिन्न-भिन्न प्रकार होंगे,

युद्धका अवलम्बन भी भिन्न प्रकारका रहेगा; पर तत्त्व वही होगा कि इन दोनोंका समन्वय विचारपूर्वक करके गीताके आदि और अन्तको पूर्णरूपेण साधकर हम जीवन-यापन करें और प्रत्येक क्षेत्रमें न्यायके साथ कुशलता तथा बलका समन्वय करें। यही गीताका आदेश या सार है।

खाहा और खधा*

(लेखक—आचार्य श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए०)

श्रीमदेवीभागवतमें भगवती खाहा और भगवती खधाका उपाख्यान दिया गया है और उनकी उपासना, स्तुति आदिका भी वर्णन है। साधारणतया खाहा और खधा—दो मन्त्र माने जाते हैं। खाहा देवताओंकी तृष्टिके लिये उनको हविः देनेका मन्त्र और खधा पितरोंकी तृष्टिके लिये उनको हविः देनेका। पर इन दो शब्दोंके अर्थमें एक गम्भीर तत्त्वका रहस्य निहित है, जो इनके संयुक्त अक्षरोंपर ध्यान देनेसे ज्ञात हो सकता है।

खाहामें अक्षर हैं—स, व, आ, ह, आ। 'स' उस शक्तिका निर्देशक है, जो हमारे चारों ओर बिखरी हुई है—जैसे जल, वायु, वृक्ष, लता, कंकड़-पत्थर इत्यादिमें। उस 'स' के साथ 'व' का संयुक्त होनेका अर्थ यह है कि कोई शक्तिसमूह एक जगहपर एकत्रित हुआ है, जैसे 'एटम' में या जीव-कोष (Cell) में। इनके साथ 'आ' दीर्घ स्वरके मिलनेका मतलब है कि वह एकत्री-भूत शक्तिके समूहकी वितान-वृद्धि हो रही है। जैसे बीजकी बनावटमें जो शक्ति काम करती है, वह उस शक्तिकी प्रथमावस्था 'स' है; वह शक्ति जब घनीभूत होती है, वह द्वितीयावस्था 'ख' है। तब उस शक्तिका पहले अंकुररूपमें, फिर वृक्षरूपमें, प्रकट होना पूर्ण 'खा' का आकार है। 'ह', जो अक्षरोंमें महाप्राणवर या प्राणेश कहलाता है, अनन्त आकाशका बीज है और

ब्रह्मानन्द अमृत-सागरका निर्देशक है। इस 'ह' में 'आ' का संयुक्त होना सागरमें शक्तिका मिल जानेकी सूचना है। मानो सागरकी लहरें 'खा' शब्दसे गरजते हुए तीरपर आकर गिरती हैं और फिर 'हा' शब्दसे शान्तरूपमें सागरमें जाकर मिल जाती हैं। ऐसे ही हवन करते हुए हवनकारी भगवान्की दी हुई शक्ति अपनेमें एकत्रित करते हुए 'खा' का उदात्त कण्ठसे उच्चारण करता है और फिर अनुदात्त स्वरसे 'हा' कहते हुए उसको उन्हींके सर्वव्यापी अग्निरूपमें समर्पण कर देता है।

'खधा' शब्दमें 'ख' का अर्थ पूर्ववत् मानना चाहिये। 'धा'का संकेत समझनेके लिये 'त' वर्गके अक्षरोंका तथ्य देखना है। 'त' से मतलब है—एक निर्दिष्ट तट या भूमि। 'थ' से उस भूमिपर स्थित एक शक्ति-समूह, 'द' से उस शक्तिसमूहकी वृद्धि, 'ध' से उस वृद्धिकी सीमा। 'न' से उस सीमापर रुकावट और 'ध' में 'आ' संयुक्त करनेका अर्थ यह है कि हवनकारी अपने शक्ति-समूहको एक अभीष्ट सीमातक पहुँचाकर पितरोंकी तृष्टिके उद्देश्य भगवान्के अग्निरूपमें समर्पण करता है। 'खधा' का उच्चारण सोममात्रामें करना है। 'ख' ह्रस्व स्वरसे और 'धा' दीर्घ स्वरसे उच्चारित होता है। अर्थात् 'ख' यदि एक सेकंडमें कहा जाय तो 'धा' दो सेकंडमें कहा जायगा। तात्पर्य धीर, गम्भीर कण्ठसे 'ख-धा-आ' कहना ही लक्ष्य है।

* इस निबन्धका भाव लेखकको श्रीमत् स्वामी प्रत्यगात्मानन्दजीसे प्राप्त हुआ।

कुब्जा-प्रसङ्गका रहस्य

(लेखक—पं० श्रीब्रजमोहनजी दीक्षित वैद्य)

श्रीमद्भगवत अत्यन्त गम्भीर ग्रन्थ है। कहीं-कहीं तो पद और अर्थके साथ-साथ पूरा-का-पूरा प्रसङ्ग रहस्यमय है। यदि परम्परा-प्राप्त संकेत न प्राप्त हो तो उनका समझ सकना अत्यन्त ही कठिन है। कुब्जाकी कामना-पूर्ति, रासलीला, चीरहरण-लीला ऐसे ही प्रसङ्गोंमेंसे हैं। यहाँ कुब्जा-प्रसङ्गपर एक दृष्टि डाली जाती है।

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धके बयालीसवें और अड़तालीसवें अध्यायोंमें कुब्जाका प्रसङ्ग आया है। अक्रूरके साथ भगवान् कंसके धनुष-यज्ञमें जा रहे थे। मथुराके राजमार्गमें उन्हें सामने आती हुई कुब्जा मिली, वह तीन जगहोंसे टेढ़ी थी। वह कंसके लिये चन्दन लिये जा रही थी। भगवान्ने उससे चन्दन माँगा। कुब्जाने चन्दनके साथ अपने आपको भी भगवान्पर निछावर कर दिया। उसके इस आत्मसमर्पणसे भगवान् प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने पैरोंसे कुब्जाके दोनों पैरोंको दबाया और दो अंगुलियाँ उसकी ठोड़ीमें लगा एक शटका दिया, जिससे उसका शरीर सीधा हो गया। उनके सुखद स्पर्शसे उसमें असीम सुन्दरता निखर उठी। उसने हँसकर भगवान्का दुपट्टा पकड़ लिया और बोली—‘अब मैं आपको छोड़ नहीं सकती।’ भगवान्ने आश्वासन दिया कि कंसके उद्धारके बाद वे उनसे मिलेंगे। तदनुसार भगवान् कुब्जाके घर पधारे। उद्धव-जी साथमें थे। भगवान्के अङ्गोंके स्पर्शसे उसकी चिरकालकी पीड़ाएँ शान्त हो गयीं।

कंसकी दासीके साथ भगवान्के इस कर्मसे साधारण बुद्धि परेशान हो जाती है। शङ्काओंके धुँएँ उसका हर कोना धूमिल हो उठता है और तरह-तरहके आक्षेपों-से उसका कण-कण विद्रोह कर बैठता है; किंतु बुद्धि-

का यह भ्रम तभीतक टिक पाता है जबतक कि रहस्यकी एक भी किरण उसको नहीं प्राप्त हो जाती।

माथुर हरिवंशने इस निबिड़ अन्धकारको हटानेके लिये प्रकाश-पुञ्जकी व्यवस्था की है। वहाँ कथा आती है—पूर्वजन्ममें यह कुब्जा एक राजाकी कन्या थी। नारद-द्वारा भगवान्का गुणानुवाद सुन भगवान्में इसका अनुराग हो गया था। वह भगवान्के विरहमें उत्पीडन-का अनुभव करती—रोती, तड़पती, कराहती। एक बार उसके पिताने नारदसे अपनी कन्याके लिये योग्य वर पूछा। नारदने कहा कि इस सम्बन्धमें कन्याकी भी राय ली जाय। कन्याने कहा—‘सर्वोत्तम समझकर आप जिनका दिन-रात गुणानुवाद गाते फिरते हैं, मैं तो उन्हींको पति बनाना चाहती हूँ।’ नारदने इसे असम्भव-सा बतलाया; किंतु कन्या अपने निश्चयपर अटल थी। बोली—‘करोड़ों जन्मोंमें कभी तो कृपा करेंगे।’ नारदको विवश होकर भगवान्की प्राप्तिका साधन बताना ही पड़ा।

उसकी उग्र तपस्यासे भगवान्का आसन डोल उठा। आकाशवाणी हुई कि दूसरे जन्ममें तुम कुब्जा बनोगी। जिसके स्पर्शसे तुम्हें दिव्य सौन्दर्यकी प्राप्ति होगी, वही तुम्हारा पति होगा। वही कन्या कंसके प्रधान मन्त्रीके घर पैदा हुई। कंसने आग्रहपूर्वक इस कन्याको चन्दन आदिके कार्यमें नियुक्त किया था।

भगवान्का कथन है कि उनको जिस रूपमें जो भजता है, भगवान् भी उसको उसी रूपमें मिलते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

जो कन्या ऐहिक-आमुष्मिक सभी भोगोंको लाल मार भगवान्को पति बनानेके लिये धुल-धुलकर

मर मिटी, यदि भगवान् ने उसकी इच्छा रख ली तो यह सर्वथा उचित ही है।

कल्पमेदसे एक और तथ्य सामने आता है। कुब्जा भगवान् की स्वरूपभूता साक्षात् भूशक्ति सत्यभामाका अंश अर्थात् साकार पृथिवी थी। दुष्ट राजाओंके भारसे बेचारी टेढ़ी हो रही थी। भगवान् ने कौतुकसे उसे सीधाकर सूचित किया कि अब उसका भार शीघ्र ही

उतरनेवाला है। इस तरह कुब्जा भगवान् की नित्यसिद्ध पत्नी थी। अतः इसमें आक्षेपका अवसर नहीं।

इस तरहके रहस्योंका उद्घाटन शीघ्र ही प्रकाशमें आनेवाली काशीके प्रकाण्ड विद्वान् श्रीराममूर्तिजी शास्त्रीद्वारा लिखित 'श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक)' नामक पुस्तकमें हुआ है। विशद ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उसकी प्रतीक्षा करें।

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

दूसरे दिन अर्थात् ७ जूनके प्रातःकाल हम फिर अपनी मंजिलपर बढ़े। मुक्कीसे तीन मील चलनेपर झाला चट्टी मिली। किंतु हमारा आजका मुकाम हरसिलका था, जो मुक्कीसे ५ मीलपर है।

असावधानी, जिसे एक तन्द्रा या मोहकी अवस्था कह सकते हैं, वह प्राकृतिक स्थिति है, जिसके आते ही बड़े-से-बड़े उत्पात और भयंकर दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। जिस समय हम इस यात्रापर चले थे, बुजुर्गोंद्वारा सुनी-सुनायी उत्तराखण्डकी इस दुर्गम यात्राकी अनेक कथाएँ याद थीं, साथ ही वर्तमान परिस्थितिकी भी पूरी-पूरी जानकारी हमने ले रखी थी। फिर हमारे दलके नेता गोविन्ददास थे, जिन्होंने प्रायः विश्व-भ्रमण किया है और भारतके पहाड़ोंपर भी काफी घूमे हैं। अतः अपनी विदेश-यात्राओं और विशेषकर इन स्थलोंकी यात्राओंके बहुत दूरतक एक अनुभवी और जानकार व्यक्तिके रूपमें वे हमारे साथ थे। सम्पूर्ण यात्राका कार्यक्रम उन्होंने ही बनवाया था और सख्तीसे वे उसका पालन कर रहे थे। सबके स्वास्थ्यकी पूरी-पूरी जानकारी रखते; यदि कोई जरा भी भ्रमस्थ या मुखमलीन दिखता तो तत्काल उसे कण्डी-डण्डीपर बैठाते तथा उसके उपचार आदिकी व्यवस्था करते। यही नहीं, एक मुकामसे प्रस्थान करनेके पूर्व पड़ावतक पहुँचनेके लिये वे सभीको आवश्यक हिदायतें नित्य ही दिया करते। रोज रात्रिमें दस-दस ग्यारह बजे सोते और सबसे पहले तीन-तीन चार-चार बजे रातमें उठ बैठते। सबको जगाते,

भारवाहकोंको बुलवाते और अपने निर्देशनमें यात्राकी सारी व्यवस्था करा तब आगे बढ़ते। जैसा पीछे कहा गया है, दलका एक साथ चलना मुश्किल होता है—कोई कम चलता है और कोई ज्यादा चलनेवाला होता है। फिर ऐसी स्थितिमें यदि साथ-साथ चला जाय तो कम चलनेवालेके साथ ज्यादा चलनेवाला बोझिल हो जाता है और मार्ग आनन्ददायक न रहकर ऊबा और थका देनेवाला साबित होता है। अतः साथ तो छूट ही जाया करता; तो भी व्यवस्था ऐसी की गयी थी कि महिलाओंके साथ कोई-न-कोई रहे। आगे जहाँ कहीं ऊबड़-खाबड़, संकीर्ण अथवा चढ़ाईवाला मार्ग आता वहाँ गोविन्ददास रुककर साथवालोंकी प्रतीक्षा करने लगते और अपने सामने ही सबको कठिन रास्तेपर जिसके कारण वे रुकते, पार करा फिर आगे बढ़ते। अभीतककी यात्राओंके इस कार्यक्रममें कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था और इसीलिये कोई आपत्ति हमलोगोंके सामने नहीं आयी थी, सभी स्वस्थ और सुरक्षित थे। किंतु आज दुर्योगसे एक दुर्घटना हो ही गयी। हरसिलके कोई २ मील इस तरफ गङ्गाके एक जगह मैदानमें दर्शन होते हैं। तीन ओर शिखरोंके बीचमें काफी चौड़ा पाट है एक ओर भागीरथी बहती है और बायीं ओरसे इस चौड़े मैदानसे एक बड़ी सरिता गङ्गामें मिलती है। हमलोग जब इस स्थानपर पहुँचे, तब दृश्यकी सुन्दरताके कारण कुछ देर यहाँ रुक गये। इस समय गोविन्ददास हमारे साथ नहीं थे। वे सबसे आगे कोई एक मील होंगे, उनके बाद

उनकी मौजाई उनसे आधा मील पीछे और उनसे करीब आधा मील पीछे हमलोग यहाँ इस मैदानमें थे। हमारे साथ दो कंडियाँ थीं, जिनपर बारी-बारी रत्नकुमारी, उनकी मौजी और एक वृद्ध नौकरानी बैठा करते थे। किंतु रत्नकुमारीकी माताजी यात्राका अधिक-से-अधिक माहात्म्य मिले इस दृष्टिसे कम-से-कम कंडी-डंडीपर चलती थीं। इस समय भी वे काफी देरसे पैदल ही चल रही थीं। रत्नकुमारीकी माताजी एक तो वैष्णव-परिवारसे होनेके नाते तथा पुराने विचारों और संस्कारोंका उनमें समावेश रहनेके कारण बेहद धार्मिक हैं। उनका मत था कि यह समूची यात्रा पाँव-प्यादे ही की जाय। किंतु चारों धामोंकी इस दुर्गम यात्रामें कहाँ क्या कह हो जाय—दलमें सभी तरहके सबल, सभी अवस्थाओंके युवक, प्रौढ़ और वृद्ध व्यक्ति थे। अतः आपद्-धर्मके रूपमें कंडी और डंडी साथ रखना उचित समझा गया। गङ्गाके इस मैदानसे ज्योंही हमलोग आगे बढ़नेको उद्यत हुए, एक कंडीवालेने रत्नकुमारीकी माताजीसे कहा 'माताजी, अब बैठ जाइये।' रत्नकुमारी और गोविन्दप्रसादने भी आग्रह किया—'बैठ जाइये।' रत्नकुमारीकी माताजी मान गयीं और उन्होंने कंडीवालेसे, जो अपनी पीठसे कंडी थामे जमीनपर बैठा था, पूछा और उसकी ओरसे स्वीकृतिसूचक शब्द सुनते ही वे कंडीमें बैठ गयीं। ज्योंही कंडीमें वे बैठा तो कंडी नीचे लुढ़की और रत्नकुमारीकी माताजी कंडीसे पृथक् हो लुढ़कती हुई समीपकी एक शिलासे टकरा गयीं। उनका सिर शिलासे भरजोर जा लगा और उन्हें काफी चोट आ गयी। यह घटना इतनी जल्दी घटी कि हमलोग कुछ न कर पाये, जल्दी ही उनका हाथ धाम उठाया, वे एक क्षणके लिये अचेत-सी हो गयीं। देखा, उनके सिरमें गूम पड़ गया है। रत्नकुमारीने शटपट ५-६ बूँद कोरामिन दिया और पथरोंपर अपना शाल बिछा उन्हें लिटा दिया। सभी बड़े चिन्तित हो गये, रत्नकुमारी विशेष। कोई एक घंटा आराम करा कंडीमें बैठा ल आगे बढ़े। हमलोगोंकी इस अप्रत्याशित देरके कारण आगे गोविन्ददास उद्दिग्धताके साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। रत्नकुमारीने तय कर लिया था कि गोविन्ददासको इस दुर्घटनाकी बात नहीं बतायेंगे, क्योंकि ऐसा करना उनको एक नयी चिन्ता और घबराहटमें डालना होगा। किंतु जब हमलोग गोविन्ददाससे मिले तो रत्नकुमारीकी माताजीकी इस मर्माहत अवस्थासे ही वे भाँप गये और उन्हें सारी दुर्घटनाका हाल बताना पड़ा। यह सारा प्रकरण सुनाने तथा दुर्घटनाके कारणोंकी पूरी-पूरी जाँच उनके द्वारा

किये जानेपर यही निष्कर्ष निकला कि इस दुर्घटनाके कारण हम स्वयं और विशेषकर रत्नकुमारीकी माताजी भी थीं। जब कंडीवालेने बैठनेको कहा, तब न हमलोगोंने देखा कि वह कैसी अवस्थामें है और न उन्होंने स्वयं भी देखा। दरअसल उसने न जाने कैसे 'हाँ' तो कह दिया; पर वह अपनी कंडीकी उस रस्सीको, जो वह बोझ उठाते समय सदैव अपनी कमरसे बाँधी रखता है, नहीं बाँधे था, न ही कंडीके सिरेवाला बड़ फंदा, जो कंडीवाला माथेमें फँसता है, सिरमें फँसाये था। और फिर ठीक उसी वक्त जब उसने बैठनेको कहा, धीरेसे जमीनमें इन सारी जखरी बातोंको देखे बिना वे कंडीपर बैठ गयीं और वह कंडी जो केवल उसकी पीठसे टिकी मात्र थी, वजन पड़ते ही निराधार हो लुढ़क गयी।

गोविन्ददासने कहा—'इस दुर्योगके कारण आप लोग हैं।' 'कहनेको बात छोटी है, हमने देखा नहीं; किंतु कल्पना कीजिये, यदि यह दुर्घटना भागीरथीके उस मैदानमें न होकर किसी बीहड़ मार्ग या दुर्गम चढ़ाईपर होती तो परिणाम आपलोगोंके सामने था—उन्होंने कहा। छोटी दुर्घटनाओंके गर्भमें सदा भयंकर परिणाम छिपे रहते हैं और उनसे तभी बचा जा सकता है जब हम निद्रामें भी चौकस रहें। हमलोग इस असावधानीके कारण शर्मिंदा थे और शर्म ही नहीं, आत्म-ग्लानिके कारण निरुत्तर और नतमस्तक थे। भागीरथीने इस दुर्योगमें भी हमें यह एक सुयोग भी दिया कि यह दुर्घटना उनके फैले आँचलमें हुई, अन्यथा यहाँ संकीर्ण पथों, ऊँची ऊँची चोटियों और हजारों फुट गहरे नीचे खंदकोंके सिवा मैदान कहाँ। हमलोग हरसिल पहुँचे और वहाँके एक सरकारी डाक्टरको तत्काल बुलाकर रत्नकुमारीकी माताजीको दिखाया। यहाँ जो डाक्टर थे, वे बड़े अनुभवी और भले आदमी थे। सौभाग्यसे इनके पास कुछ अच्छी पेटेन्ट दवाइयाँ और ब्लडप्रेसर नापनेका यन्त्र भी था। देखा अब उन्हें बुखार हो आया है और ब्लडप्रेसर भी बढ़ गया था। सुक्रीसे चढ़ाव उतारके साथ चलते-चलते अब हम लगभग छः सौ फुट नीचे उतर आये थे। हरसिलकी ऊँचाई ८१०० फुट है। यहाँ भी हमारे निवासकी व्यवस्था वन-विभागके विश्रामालयमें थी। हरसिलका यह डाक-बंगला, जिसमें हम ठहरे थे, यथार्थमें बंगला न होकर एक धर्मशालाके सदृश दिखता है, काफी विशाल। इसका हमें एक इतिहास ज्ञात हुआ, जिसकी यहाँ चर्चा करना अनुपयुक्त न होगा।

यह विश्रामालय वर्ष पूर्व श्रीविश्राम श्रीविलसनने टेहरी-गढ़वा वर्षपर लिया वार्षिक आय सन् १९४४ पैतालीस ल श्रीविलसनने किया। उ और मागों भी भेजा यहाँकी ल किया। आरम्भ ही नीचे उ अमी लिहाज हिलने उससे कि कर निव सी क ल से

यह विश्रामालय सन् १८६४ ईस्वीमें अर्थात् लगभग सौ वर्ष पूर्व श्रीविलसन नामक एक अंग्रेजद्वारा बनाया गया था। श्रीविलसनने पहले-पहल इस वन-प्रदेशका ठेका उस समयके टेहरी-गढ़वालनरेश श्रीकीर्तिशाहसे केवल सौ गिन्नी प्रति-वर्षपर लिया था। उस समय टेहरी गढ़वाल रियासतकी वार्षिक आय केवल आठ लाख रुपया थी, जो आगे चलकर सन् १९४९ में रियासतोंके विघीनीकरणके समय लगभग पैंतालीस लाख हुई और अब करीब एक करोड़ प्रतिवर्ष है। श्रीविलसनने पहले-पहल इस दुर्गम प्रदेशकी लकड़ीका उपयोग किया। उस समय ही नहीं, आज भी इस क्षेत्रके यातायात और मार्गोंका यह हाल है कि इस लकड़ीको स्थलमार्गसे कहीं भी भेजा जा सकना सम्भव नहीं है। अतः श्रीविलसनने यहाँकी लकड़ीको गङ्गाके प्रवाहमें बहाकर नीचे भेजना आरम्भ किया। श्रीविलसनकी इस सूझसे यहाँकी लकड़ीका उपयोग आरम्भ हुआ और आज भी यहाँकी लकड़ी गङ्गाके प्रवाहद्वारा ही नीचे भेजी जाती है।

उस समय श्रीविलसनका बनवाया उक्त बँगला लगभग अभी भी वैसा ही है, आकार-प्रकारकी दृष्टिसे। हाँ, अवस्थाके लिहाजसे काफी बुजुर्ग हो गया है और अब उसके हाथ-पाँव हिलने लगे हैं। कुछ हिस्से जीर्ण-शीर्ण भी हो गये हैं और उसके अङ्ग अपना स्थान छोड़ने लगे हैं। समझमें नहीं आता कि इसकी मरम्मतमें सरकार यह विलम्ब या लापरवाही क्यों कर रही है। बँगला दुमंजिला है, नीचेकी मंजिलमें सेनाका निवास है। भारतीय सेनाके दस्ते निकट ही तिब्बतकी सीमा प्रारम्भ होनेके कारण यहाँ तैनात हैं। इनमें सेनाकी तीन कम्पनियाँ रहती हैं। बँगलेके चारों ओर कुछ फलके वृक्ष लगाये गये हैं। इनमें सेबके दरख्त अधिक संख्यामें हैं। सेबके ये तरु संतरेके बड़े वृक्षोंके सदृश होते हैं, लगभग वैसे ही पत्तोंवाले और वैसे ही नाप-तौलके। सुना गया है कि हरसिलकी सेब बहुत अच्छी होती है और दूर-दूर तक जाती है। इस समय तो ये कच्ची थीं। अतः हम इनके स्वादसे वञ्चित रहे।

हमने आज हरसिल गाँव भी अच्छी तरह देखनेका प्रयत्न किया। इस यात्रामें यह पहला गाँव था, जिसे हमने कुछ व्योरेमें देखनेकी कोशिश की। गाँवमें स्वच्छताका सर्वथा अभाव था। परंतु इतनेपर भी मानव कितना कलाप्रेमी होता है, इसका ऐसे गाँवमें भी हमें प्रमाण मिला। देवदारकी लकड़ीके गंदे मकानोंमें भी कहीं-कहीं खुदावका काम किया गया था

और इस खुदावके काममें कहीं-कहीं रंग भी भरा गया था। मकानोंकी छावनीमें किसी-किसी मकानपर छोटी-सी गुमटी बना दी गयी थी और गुमटीपर देवदारके काष्ठका ही एक छोटा-सा कलश निर्मित किया गया था। हरसिल ऊनके व्यापार और ऊनी कपड़ेके लिये प्रसिद्ध है। उत्तरप्रदेशकी सरकारका भी यहाँ एक डिपो है। कम्बल, अलवान, पट्टू आदि बहुत अच्छे और उचित दामोंमें मिलते हैं। उनका यह सारा व्यापार गृह-उद्योग है और ऐसा गृह-उद्योग, जो मशीनोंसे न होकर हाथसे चलता है, जिसमें यहाँके निवासी स्त्री और पुरुष समान रूपसे जुटे रहते हैं। यह ऊन यहाँकी भेड़ोंके सिवा तिब्बतकी भेड़ोंसे भी प्राप्त होता है। सैकड़ों भेड़ोंके झुंड-के-झुंड यहाँ हमें मिले। कुछ तिब्बती लोग भी मिले, जो यहाँसे भेड़ोंका और उनकी ऊनका व्यापार करते हैं।

यहाँ हमारी उत्तरप्रदेशकी सरकारके डिप्टी कलेक्टर श्रीमहीपालसिंह और उनकी चित्रकार पुत्री कुमारी नीलमसे भेंट हुई। इनका स्नेहमय व्यवहार हमारी यात्राका एक संस्मरण बना। श्रीरामदासजी गुप्ता भी यहाँ आ गये थे। श्रीमहीपालसिंहजी और श्रीगुप्ताजीसे हमें इस क्षेत्रके सम्बन्धमें अनेक जानकारीयाँ प्राप्त हुई। परंतु इस स्थानका नाम हरसिल कैसे पड़ा, यह बहुत प्रयत्न करनेपर भी ज्ञात न हो सका। हरसिल हमें एक विचित्र-सा नाम जान पड़ा। थोड़े दिन पूर्व ही सूर्यमण्डलके जिस एक नये ग्रहका पता लगा है उसका नाम हरसिल है। इस नये ग्रह और इस गाँवके नाममें यह साम्य कौतूहल अवश्य उत्पन्न करता है, पर चर्चा करने और सोचनेपर भी हम अपनी जिज्ञासाका समाधान न कर सके।

हरसिलमें दिनमें बड़े वेगसे वायु चलती रही। सुना कि वायुका यह वेग नित्य प्रातःकाल ९ बजेसे संध्याके ६ बजेतक रहता है। इस प्रकारकी हवा कश्मीरमें पहलगौव और बम्बई-प्रदेशमें देवलाली आदि स्थानोंपर चला करती है। हरसिलकी संध्या भी बड़ी मनोरम थी। जिस बँगलेमें हम ठहरे थे, वहाँ-से हिमालयके हिमाच्छादित शिखरोंकी एक श्रेणी दीख पड़ती थी; परंतु इस श्रेणीके शृङ्ग पूरे-के-पूरे बर्फसे नहीं ढके थे। इनपर बर्फका इस तरह जमाव था कि शृङ्ग हिमके हार पहने दृष्टिगोचर होते। पहले ये हार रजतके जान पड़े, ज्यों-ज्यों भगवान् भास्कर अस्ताचलकी ओर चले किरणोंने रंग बदले और उनके साथ ही इन हारोंने भी। रजतसे ये स्वर्णके दिखे और स्वर्णके बाद माणिकके।

यहाँ संध्याको हमें एक अद्भुत दृश्य दिखायी दिया।

हमलोग बढ़े। हमारे साथ चढ़ाई भी बढ़ी। कभी कुछ नीचे भी उतरते, किंतु आज तो हमें एक विशेष ऊँचाई पर पहुँचना था। अतः जितना नीचे उतरते उससे दुगुना ऊँचे चढ़ना पड़ता। फिर न केवल चढ़ाईका ही हमें सामना करना पड़ा, मार्गने भी अपना भीषण रूप दिखाया। सारे मार्गमें अनचढ़ पत्थर थे, कहीं नुकीले, कहीं फिसलनेवाले। अनेक जगह तो सुरंगके द्वारा गिरायी गयी पैनी शिलाएँ मार्गमें पड़ी मिलीं। फिर संकीर्ण भी इतना कि कहीं-कहीं केवल दो फुट ही चौड़ा, जिसके एक ओर गगनचुम्बी हिमवानके शिखर और दूसरी ओर गङ्गाका प्रवाह। इसके साथ कुछ स्थानोंपर तो भागीरथीने उपत्यकाओंको काटते-काटते मार्ग भी समेट लिया था और उस खण्डित मार्गको लकड़ीकी दो लंबी लाठोंके सहारे पटिये पाट पुनः चालू किया गया था। ऐसे पटियों-पटे इस मार्गको, जिसे न पुल ही कह सकते हैं न मार्ग ही, जब हम पार करते, नीचे उफनती हिलोरें लेती भागीरथीके रवको सुनते और जिस पटियोंवाले मार्गपर हम चल रहे थे, उसकी वे दो लकड़ीकी लाठें जिनपर ये पटिये बिछे थे, जब देखते तो जान मुट्ठीमें आ जाती। कभी-कभी एक साथ ही कुछ लोग उस ओरसे आ जाते और हमलोग भी इधरसे चल पड़ते। ऐसी स्थितिमें जब यह पटावका पुल हिल उठता, तब बस कुछ मत पूछिये, जान पड़ता अब हर हर ही है। फिर खूबी यह है कि ये पटावके पुल सर्वथा अस्थायी (टेम्परेरी) होते और यदि इनपर एकबारगी एकतरफा वजन पड़ जाय तो ताज्जुब नहीं, इनका वह अगला सिरा अपना स्थान छोड़ दे। इस तरह सचमुच ही हम न केवल भीषण चढ़ाई वरं भयंकर चढ़ाई और कठिन मार्ग पार कर रहे थे। भैरोंघाटीके कुछ पूर्व हमें एकबारगी बड़ी दुर्गम चढ़ाईका सामना करना पड़ा। यह अन्तिम चढ़ाई थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, सभी दुर्दशाओंसे पूर्ण यह चढ़ाई स्थिर मन और जमे पावोंको थका और हिला देनेवाली थी। सचमुच ही बड़ा भयंकर मार्ग,

हम यह नि
यमुनोत्तरीत
यह मार्ग ।
कठिनाइयों
करता था,
इस मार्गमें
की अपेक्षा
कदाचित्
यमुनोत्तरी
गया था
निर्विवाद
चढ़कर
उ
इनकी
दोनोंप
हम इ
निश्चि
और
शास
अधि
पूर्व
परा

परे
स्थ
ह
अ
प
वि

हम यह निर्णय न कर पाते कि यमुनोत्तरीका जानकी चट्टीसे यमुनोत्तरीतकका मार्ग कठिन था, या हरसिलसे भैरोंघाटीतक यह मार्ग। यद्यपि प्रकृतिका वह श्रमहारी वरद हस्त जो हमारी कठिनाइयों, तकलीफों और कष्टोंका यमुनोत्तरी मार्गमें निवारण करता था, वह यमुनोत्तरीकी तरह और उससे भी कहीं अधिक इस मार्गमें हमारे चतुर्दिक् था, तो भी यमुनोत्तरीके उस मार्गकी अपेक्षा आज हमें यह मार्ग अधिक कष्टदायक प्रतीत हुआ। कदाचित् हमारी इस भावनाका कारण यह भी हो कि यमुनोत्तरीका वह मार्ग अब केवल हमारी स्मृतिकी वस्तु बन गया था और यह अनुभवमें आ रहा था। जो भी हो, यह तो निर्विवाद है कि दोनों ही मार्ग बहुत बुरे—एक दूसरेसे बड़-चढ़कर आदमीके मनको चूर-चूर कर देनेवाले थे।

उत्तराखण्डमें मोटरके मार्ग बने हैं और बन रहे हैं; इनकी उपयोगिताका जहाँतक प्रश्न है, उसके पक्ष-विपक्ष दोनोंपर ही बड़े तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं और इस दृष्टिसे हम इसे एक गम्भीर मामला मानते हैं। किंतु यहाँ यह तो निश्चित और सुस्पष्ट है कि जनसाधारणका जहाँ आकर्षण हो और हजारोंकी तादादमें लोग जहाँ प्रतिवर्ष जाते हों, वहाँ शासनको सहूलियतें देनी ही चाहिये और इस दृष्टिसे हम यह अधिक आवश्यक समझते हैं कि प्रशस्त मोटर मार्ग बनानेके पूर्व यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरीके ये दुर्गम मार्ग साधारण मार्ग या पगडंडी कहे जाने लायक तो बना ही दिये जायँ।

फिर, यहाँ केवल मार्गकी खराबीके कारण ही यात्री परेशान नहीं होता वरं समूचे मार्गमें एक स्थान दूसरे स्थानसे कितनी दूरीपर हैं, हम कितनी ऊँचाईपर चल रहे हैं, आगे कितनी चढ़ाई है, कितना उतार है, कहाँ क्या आफत है आदि बातोंसे सर्वथा अनभिज्ञ यात्रीको यह रास्ता पग-पगपर कष्टदायक प्रतीत होता है। यमुनोत्तरी मार्ग तो इन विवरणोंसे रहित था ही, यही हाल अभीतक गङ्गोत्तरी मार्गका रहा। केवल एक स्थानपर हमें एक बोर्ड दिखा, जिसमें लिखा हुआ था—चढ़ाई; जहाँ यह चढ़ाईकी तख्ती लगी थी, वहाँसे चढ़ाई आरम्भ न होकर उतार प्रारम्भ होता था। उतारके आरम्भमें तख्तीपर चढ़ाईका संकेत देख हम बड़े विस्मित हुए। सोचा, हम जानेवालोंके सामने उतार होनेके कारण कदाचित् आनेवालोंके लिये इस तख्तीका उपयोग हो; पर देखा तो स्पष्ट मालूम हुआ कि हमारे लिये तो इसका उपयोग था ही नहीं, उस ओरसे आनेवालोंको भी जो समूची चढ़ाई

चढ़कर यहाँ जब पहुँचते, तब यह तख्ती उन्हें देखनेको मिलती, कोई उपयोग नहीं था। कदाचित् ऐसे ही यात्रियोंको जो सम्पूर्ण चढ़ाई चढ़कर जब यहाँ पहुँच जाते, तब यह तख्ती उन्हें यह याद दिलाती कि आपलोग चढ़ाई पार कर आये हैं; सिवा इसके इस तख्तीका यहाँ कोई उपयोग नहीं था। अब-तककी सारी यात्राओंमें एक तख्ती मिली, उसमें भी यह विचित्र सूचना देखकर हमें हँसी आ गयी। अधिकांश यात्री डंडियों और कंडियोंपर नहीं आते, न उनके साथ उनका असबाब उठानेवाले व्यक्ति रहते हैं। अतः ऐसे लोगोंको जो पाँव-पाँव पर्वत नापते हैं, इस प्रकारके संकेतात्मक बोर्डोंकी यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरी दोनों भागोंमें अत्यधिक आवश्यकता है। इस कार्यमें बहुत खर्चकी भी जरूरत नहीं है, अतः ये बोर्ड तो तुरंत लगने ही चाहिये।

यहाँ एक आश्चर्यजनक बात और हुई। ऊँचे पर्वतके दो शिखरोंकी चोटीपर पड़े एक पुलपर हमारी दृष्टि पड़ी तो हमें बड़ा विस्मय और कौतूहल हुआ। कुछ देर हम यहाँ रुके। अपनी दृष्टि साफकर इस पुलको हमने पुनः देखा और जब मनमें इस बातकी पुष्टि हो गयी कि यह पुल ही है, तब जिज्ञासापूर्ण मनसे आगे बढ़े। पुल तो हमने देख लिया; पर अब भी यह माननेके लिये हम तैयार न थे कि इस ऊँचाईपर यह पुल यात्रियोंके लिये बना होगा। साधारण मानवोंके लिये यह स्थान अगम्य था; हाँ, देवताओंका यात्रापथ अवश्य हो सकता है। अस्तु, इस रहस्यका यहाँ कोई समाधान न देख हमने भैरोंघाटी पहुँचकर इस सम्बन्धमें छानबीन करनेका निश्चय किया।

जहाँ हमने यह पुल देखा, वहाँ एक बड़ी सरिता आकर गङ्गामें मिलती है। यद्यपि इस सरिताका और गङ्गा दोनों-हीका प्रवाह यहाँ भी पर्याप्त तेज ही है परंतु पूर्वापेक्षा नहीं। पाट चौड़ा है, फिर चट्टानोंका अवरोध न होनेके कारण प्रवाहमें तेजी होते हुए भी वह रोष और विकलता यहाँ नहीं है जिसे हम पीछे देखते आये हैं। जान पड़ता है अवरोधरूपी शिलाओंको चूर्ण-चूर्णकर उन्हें रेत बना अपने महान् परिश्रममें सफलता प्राप्तकर जाह्नवी यहाँ कुछ थकित हो विश्राम करती बह रही हों। दोनों ओर हिमवान्के यद्यपि ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, फिर भी तटवर्ती उपत्यकाओंका सम्पर्क कुछ देरके लिये छोड़ अब भागीरथी अपने दोनों ओरके कगारोंपर एकत्रित उन उपत्यकाओंके ही शिशुरूप कणोंको सहला रही थीं, जिनसे संघर्षकर उन्होंने उन्हें यह रूप दिया था। (क्रमशः)

वैज्ञानिक संजीवनी

(लेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

[गताङ्कसे आगे]

वैज्ञानिक आतिथ्य-सत्कार

अपने घरपर आये हुए अनजान अतिथि, राहगीर, भिखारी, रिश्तेदार अथवा जान-पहचानके मित्र-मेहमानके स्वागत, आतिथ्य-सत्कारके तरीके, अपनी हैसियत, प्रेम और मर्यादाके अनुसार सभी समाज और देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके हैं। ये अतिथि दो प्रकारके होते हैं—सम्बन्धित और असम्बन्धित, इष्ट वा अनिष्टकारी। रोगको भी एक अनचाहा अतिथि मानें, जो हमारे ही असंयम और कर्मसे सम्बन्धित होता है और छुआ-झूतसे उत्पन्न हुआ, अनायास और असम्बन्धित। रोगनाश या रोगनिरोधकी वैज्ञानिकता यों समझे कि हमारे घरपर ऐसा कोई अनिष्टकारी या अनजान, अनचाहा अतिथि आ जाय, जो चोरकी भाँति घुसे और हमारी कमजोरी, लापरवाही या अज्ञानतासे वह डेरा जमा ले तो उससे पीछा छुड़ानेके पुराने-नये शास्त्रीय, देशी-विदेशी, वैज्ञानिक—कई प्रकारके उपाय प्रचलित हैं। रोग या चोर हमारी देहमें या घरमें घुसा हुआ अनिष्टकारी अतिथि है। एकदेशी आयुर्वेदिक आदिम उपाय पञ्च-कर्म अथवा यौगिक उपाय षट्कर्म करो अर्थात् मल-मूत्र, पसीना, वमन कराओ, खानेको कुछ मीटो—अपना सारा घर खाली कर दो, ठंडा पानी पिलाओ—सेवा-मालिश करो, आराम दो। घर खाली हो जायगा तो रोग या चोर क्या खायगा ? भूखों रहकर कमजोर होकर स्वयं भाग जायगा। परंतु यह पद्धति अब खटपटी होकर आयुर्वेदके शिष्योंद्वारा प्रायः भुलायी जा चुकी है, जैसे अपनी पचास पीढ़ीका इतिहास कोई नहीं जानता। अब तो यह आत्मनिर्भर आत्मोपचार पद्धति 'बिन कड़वी भेषजके पिये, मिट्टी न तनके रोग' का मन्त्र लेकर विज्ञानद्वारा दूकानदारी बनकर अज्ञानपर व्यवसाय करने लगी है। इसपर इस पद्धतिके मूलमन्त्रको प्रोपकार-वृत्ति प्रचार करके आत्मनिर्भर बनानेके लिये प्राकृतिक चिकित्सकोंने पञ्चकर्म षट्कर्म-संयुक्त साधनोंका आधुनिक वैज्ञानिकरूपमें समन्वय एनिमा, स्टीम बाथ, अनेक जल-प्रयोग, सूर्यकिरणके अभावमें विद्युत् और मालिश तथा वमन आदिके यान्त्रिक साधन और विधियाँ पश्चिमसे सीखकर उसे एलोपैथीकी ईर्ष्यालु मँहगी सौतेली बहिन बना लिया है। तीसरा तरीका एलोपैथिक विज्ञान, आधुनिक संसारमें पचपन देशोंमें सरकारद्वारा कानूनसे प्रचलित

है, जो यान्त्रिक एवं सूक्ष्म विधियोंसे जादुई प्रदर्शनसे निदान करके, शरीरके रस, रक्त और प्रमुख अवयवोंकी पारदर्शक परीक्षा करता है, सूक्ष्म कीटाणुओंका घातक प्रभाव सिद्ध करता है और उन्हें मारने, उनके घातक प्रभावको नष्ट करनेके लिये उन्हीं कीटाणुओंको मुर्दा, अधमरा या जिन्दा हालतमें अनेक रस-रसायनोंसे संयुक्तकर शरीरमें प्रविष्ट करता है—यह है रोगका वैज्ञानिक आतिथ्य-सत्कार। जिससे अनिष्टकारी चोर विष-मवाद और डंडोंकी चोट पाकर और बाहर निकलनेका मार्ग बंद पाकर भीतर-ही-भीतर दबा छिपा, औषधरूपमें विकृत सामग्री पाकर कालान्तरसे चोला बदलते हुए बहु-रूपिया बनकर घरके मालिक रोगी और वैज्ञानिक उपचारको परेशान करता, भ्रान्त बनाये रखता है और वैज्ञानिक इस बहु-रूपियेसे निबटनेके लिये अनेक दाब-पेंचके प्रयोग और अनेक प्राणियोंकी हत्या करके उनके रक्त-मांस-मवाद-चर्बीमें शोध करते, नये अस्त्र-शस्त्र ढूँढ़ रहा है। इस विज्ञान और कलाको जानने-सीखने और जहर देने, छुरी चलाने, सुई चुभानेकी कलामें दक्ष होनेके लिये सरकारद्वारा प्रमाणित-पालित विद्यालयोंमें कई वर्ष लगते हैं और बहुत धनव्यय और परिश्रम करना पड़ता है। इतना कुछ न जानो और न करते बने तो चौथा उपाय है कि उसी एलोपैथिक सिद्धान्त 'विरोधीका विरोध अन्य विरोधीकी सहायतासे निपटाना अर्थात् घरमें घुसे चोरका उत्पात दबानेके लिये डाकूको बुलाना' लैटिन भाषामें 'Ubi virus, ibi vitus' अर्थात् 'Our strongest poisons are our best remedies,' "Opposites cure opposites," (Contrari contrari is Curantur) के विरुद्ध होम्योपैथिक 'Similia similibus curantur' (like cures similar के अनुसार एलोपैथिक विष-चिकित्सा (allopathic poisonopathy) के विरुद्ध, एलोपैथिक विषोंकी सूक्ष्म मात्रा शक्कर पानीमें घोलकर खिलाओ। इसका नाम होम्योपैथी, जिम्मेदार आविष्कारक-प्रचारक जर्मनीके एलोपैथिक अनुभवी डॉक्टर हैनीमैन थे। यह पद्धति सहज है, कोई भी इसका अभ्यास कर सकता है। इसमें कोई हानि नहीं, अपराध नहीं होता, विशेष शिक्षाकी भी आवश्यकता नहीं। यह भी न करते बने तो क्षारोंकी भस्मको मीठी करके

सूक्ष्म मात्रामें दो। यह हुई शुश्रूषा साहबकी द्वादश-क्षार चिकित्सा। द्वारपर आये हुए भिक्षुकको जैसे कोई एक रोटी देता है या भरपेट खिलाता है, एक पैसा देता है, कोई डॉक्टर कर भगाता है, कोई विनयपूर्वक हाथ जोड़कर विदा करता है, टाल देता है, वैसे ही ये चिकित्साके वैज्ञानिक उपाय हैं।

वैज्ञानिक हौआ

आधुनिक विश्व-प्रचलित वैज्ञानिक चिकित्साके विषयमें, महात्मा गाँधीद्वारा प्रशंसित विख्यात¹⁰ डॉ० जोशिया ओल्फील्ड, एम० आर० सी० एस०, एल० आर० सी० पी०, डी० सी० एल०, एम० ए० ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'दुःखदर्दपर चिकित्सा और विजय' में पुरानी और नयी चिकित्सा-पद्धतिकी तुलनामें अपने स्पष्ट विचार लिखे हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि यह चिकित्सापद्धति हमेशा¹¹ प्रयोगात्मक रही है और रहेगी, इसका कभी कोई परिणाम अन्तिम सिद्धान्त बनकर स्थिर नहीं होने पाता, दवाओंके प्रयोगसे रोगोंके लक्षण दबते, बदलते, पुराने होते, असाध्य हो जाते हैं और नित्य नये शोधोंसे नयी दवाइयों और नये सिद्धान्त तथा साधन बनते जाते हैं। डॉ० ओल्फील्डने लिखा है—“रोग-निरोध”¹² के लिये स्वस्थ उत्पन्न व्यक्तियोंके रक्तमें नकली बीमारी पैदा की जाती है, जिसे देखकर असली आनेवाली बीमारीको धोखा हो जाय। पहलेसे वहाँ नकली रोग मौजूद देखकर उल्टे पाँव लौट पड़ते हैं, अथवा जैसे किसान अपनी फसलकी रक्षाके लिये जंगली जानवरोंको रातको डराने-भगानेके लिये अपने खेतोंमें फूटी हंडी सफेद-काली रँगकर एक लकड़ी या कपड़ा डालकर पुतला (dodge) बनाकर खड़ा कर देते हैं। रोग-निरोध, रोग न आने पाये, इसलिये अन्य प्राणियोंमें रुग्ण रक्त संचार-कर उसकी शक्ति कमजोर या मुर्दार करके मवादके रूपमें निकाल या बनाकर वैज्ञानिक लोग इलाजके नामसे उस रक्त या मवादको स्वस्थ लोगोंके रक्तमें धोते हैं, जैसे रास्तेमें सामने मुर्दा आता देख अथवा कहीं सड़ौद-गंदगी-दुर्गन्ध देख या जानकर लोग किनारे होकर चलते हैं। यह है रोग-निरोधका विज्ञान, रोगको दुत्कारनेका वैज्ञानिक उपाय। यहाँ

तो रोग और मुर्दा पहले ही मौजूद है, अब और रोगको जगह कहाँ ?

इतना सब वैज्ञानिक व्यवसाय अपनी आँखों देखते हम भारतीयोंकी बुद्धि और सांस्कृतिक धार्मिक भावना, पवित्रताकी भावना, इस रक्त-संकर-विज्ञानसे कितनी मुर्दार हो गयी है कि हम लाखों रुपये खर्च करके इसके दलदलमें प्रतिवर्ष गहरे धँसते जा रहे हैं और वर्णसंकर बननेके विरुद्ध तथा अन्य धर्मोंके प्रचारके भरपूर विरोधमें आवाज उठाते हैं। अपना प्राचीन अहिंसक धार्मिक आत्मभावका गौरव कायम रखनेके लिये यह कैसा अंधेर और पाखण्ड है ! इस जबरदस्त संगठित वैज्ञानिक कल्याणकारी चिकित्साके नगारेकी आवाजमें हमारी धार्मिक सांस्कृतिक पवित्रताकी तूती न हम बजा पाते, न किसीको सुना पाते और न स्वयं चुपचाप चैन ले सकते, न दूर कहीं भागकर जा सकते, जहाँ इस अन्धविज्ञानका मकड़-जाल न फैला हो, जहाँ हर प्रकार स्वतन्त्रता और शान्तिसे जीनेका क्षेत्र हो, जहाँ रोगनाश और स्वास्थ्य-साधनके लिये कानून और विज्ञानका कोई बन्धन न हो, जहाँ हमारा भोजन, पानी, हवा, रक्त, वैज्ञानिक विषोंसे गंदा न हो सके।

वैज्ञानिक बूचड़खाना

डॉ० ओल्फील्डने लिखा है :—“In the school of medicine, is the great school of bleeding. The blood is the life. If man is ill, it shows that his blood is impure. Get rid of impure blood and he will be cured, and will build up new and healthy blood in place of old dregs that are drawn off. Sound sense, as far as it went sanely, arrant nonsense when it fell in the hands of.....called “Practitioners”. For them no experience, no teaching, no study, no research was needed. “You are ill, open a vein, draw off half a pint of blood. If you are then cured, give me my fees and praise. If you are not cured, open another vein and draw off another half a pint of blood. Continue this process until your money and your blood supply is exhausted, and then, “he died and was forgotten.”

यह पुरानी वैज्ञानिक प्रथा थी, इसमें रक्तपातका ही महत्व था। यदि आप बीमार हैं तो जरूर आपका रक्त

10. Dr. Josiah Oldfield, M. R. C. S., L. R. C. P., D. C. L., M. A.: “Healing and Conquest of Pain.”

11. Medical science has been and shall ever be on the experimental stage without any final principle for good.

12. Immunity.

खराब है। एक नस खोलो, सवा पाव खून निकालो; अच्छे हो गये तो हमारी फीस दो, हमारी तारीफ करो। न अच्छे हुए तो दुबारा नस काटो, खून निकालो। इस प्रकार गंदा खून निकल जानेपर नया खून बनेगा। बार-बार यह क्रिया करते रहो।' इस क्रियाके लिये कोई शिक्षा-दीक्षा, अभ्यास, शोध और अनुभवकी आवश्यकता न थी। यह धंधा अना-डियोंके हाथमें पड़कर लोगोंकी जान लेने लगा। धंधेदार डॉक्टर अपनी कुशलता-सफलताकी तारीफ करते, मूर्ख रोगी जा फँसते, अपना सारा धन खर्च करके स्वयं भी समाप्त हो जाते, सब कुछ भुला दिया जाता, बेचारा अपनी मौतसे मरा। उस जमानेमें यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि कोई विरोध करनेका साहस न रखता था। परंतु अब यह विज्ञान बदल गया, रद्द हो गया है।

"Anyone who doubted the efficacy of universal blood-letting, while venesection was curing people, would have risked his life. This wonderful method of curing disease, which was supported by the most convincing evidence of incomparable value, is now cast into oblivion, and all its scientific advocates condemned to contumely."

पुराना विज्ञान बदलकर अब नये सिद्धान्त और नये रूपमें नगरिकी चोटपर प्रचलित हो रहा है। इसके अनुसार अब जन्मते ही संतानके खूनमें पशुओंसे बना रोग-निरोधक मवादका टीका लगाया जाता है। पहले यह गायके स्तनके मवादसे बनता था और बहुत वर्षोंतक भारतके बच्चे-बच्चोंके खूनमें घोला जा चुका है। परंतु अब यह भेड़के मवादसे बनता है। भेड़में रोगी विषाक्त रक्तका संचार करके उसे मार डाला जाता है, पश्चात् उसका मवाद—पीव निकालकर ग्लिसरीन मिलाकर यह टीका बनता है। आगे चलकर यह प्रथा इतनी फैल जायगी कि जन्मते ही बच्चोंके कतिपय अङ्ग—टांसिल, अपेंडिक्स और अन्तिम आँतें काटकर फेंक दी जाया करेंगी; क्योंकि ये अङ्ग आगे बढ़ती उम्रमें घातक रोग फैलाते हैं, ये अङ्ग शरीरमें होने आवश्यक नहीं हैं, इनके बिना भी इन्सान जी सकता है, ये अङ्ग अल्ला मियाँकी गलतीसे, कुदरतकी अंधेर-कलासे बने हैं, इनको निकाल फेंकना चाहिये।

वैतरणी

"Everyone is to be compelled to be

vaccinated,¹³ and then to be immunized, and so on until the logical regime will be that every baby at birth shall have all its primitive and no longer useful and therefore dangerous organs removed such as appendix, tonsils and descending colon."

Every baby shall have injections made into the bloodstream or lymph stream of antigens against every disease, so that men may grow up so armed and defended against all the weapons of death. Immortality will be achieved by a process of setting disease to kill disease, and setting death to cheat death of his greatest weapon.

हर एक बच्चेके रस-रक्त-प्रवाहमें हर एक रोगके निरोधके लिये इन्जेक्शन दिये जायँगे, जिससे वह अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर मौतसे लड़नेको तैयार रहेगा। मनुष्यके शरीरमें नकली बीमारी और नकली मौत व्याप्त कर दी जायगी, जिससे आनेवाली बीमारी और मृत्युको धोखा दिया जा सके। पुराने अन्धविश्वासपर यह नया अन्धविश्वास। आजके इस जबरदस्त वैज्ञानिक ठोंगेका प्रमाण देखनेको दो पीढ़ी अर्थात् सौ बरस लग जायँगे कि इस विज्ञानमें कितनी विकासक या विनाशक करामात है। जैसे कि हम आजसे सौ, दो सौ, पाँच सौ वर्ष पहलेकी बातोंको अन्धविश्वास और अज्ञान समझते हैं, उसी प्रकार आगे सौ वर्षतक हमारी आजकी प्रचलित पद्धतिका परिणाम हमारी अगली पीढ़ीकी संतानोंमें जब प्रकट होगा तो वे हमें क्या अज्ञानी, अन्धविश्वासी कहकर नहीं धिक्कें रेंगी? इसलिये हम आजके विज्ञानको जबतक सौ वर्ष पूरे होकर हमारी करामातोंका परिणाम हम न देख लें, कैसे विज्ञान मान लें? क्या इस रक्त-मवादके टीके इन्जेक्शनसे दुःखदर्द और मृत्युपर विजय मिल जायगी? यदि हाँ, तो

13. Vaccination : Protective inoculation against small pox with vaccinal virus, performed by placing lymph from vaccinia vesicles of a cow or of a man upon denuded or scarified skin. Vacca, in Latin, means the cow.

Vaccine—Pertaining to the cow.

Lymph—Scab or any substance containing the virus of cowpox, any material for preventive inoculation, particularly a preparation or suspension of killed bacteria, which on introduction into the body produces active immunization by formation of antibodies.—American Illustrated Medical Dictionary.

सड़े सूखे मुर्दार मवाद और जिंदा कीटाणुओंवाले मवादको भी सारी देहपर चुपड़ा-चुभोया और खाया-पिया जाय ? उसी वैतरणीमें डुबकी लगाओ । यदि नहीं, तो इस नये ज़बरदस्त अन्धविश्वाससे मुक्त होनेका साधन क्या है ? कुन्सी या मवाद भरे फोड़ेके फूटनेसे मवाद निकल जानेसे दर्द नहीं रह जाता और सफ़ ईसे घाव अच्छा हो जाता है, यह सभी जानते और मानते हैं । परंतु उसी निकलनेवाले मवादको रसायनके रूपमें पुनः शरीरमें रोगनिरोध या इलाजके लिये धोना, कानून और विज्ञानके नामपर इस सभ्य जमानेकी कैसी विडम्बना है ।

“This is the medical method of heresy-hunting with a vengeance. It can as surely destroy the individual's progressive thought as the old superstitions heresy destroyed the individual's soul evolution.....It will take two generations that is a century at least before we can collect any reliable data as to the effect of introducing the various sorts of animal strain secretions into human lymph stream. Before a century has passed, therefore it is not science, but either superstition or mammon which demands compulsory injections into the children of human race...Will this theory overcome pain and transform death ? If not, let us beware how we try to outbid slavery to a church and superstition by a more wretched slavery to a Medical creed and to a Medical superstition.

अनाड़ी (Quack) कौन है ?

मानवके दुःख और रोग दूर करनेके प्रयत्नमें वैज्ञानिकोंने आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिका चमत्कारिक विकास किया है जो दवाकी गोलियों, कैप्सूल, सुल्फा और एण्टि बायोटिक दवाओं, टीका, इन्जेक्शन और लुरीबाजी—ऑपरेशनसे अपनी वैज्ञानिक कलाका चमत्कार दिखाते हैं, दवाओंके जादुई प्रभावसे रोगको कपूरकी तरह उड़ा देते हैं, देहमें आनेके पहले ही दुत्कारकर भगा देनेका दावा करते हैं, स्वयंको वैज्ञानिक चिकित्सक घोषितकर सरकारसे जनताका सब प्रकारसे इलाज करनेका अधिकार ले लिया है और अपने व्यवसायका प्रचार करते हैं । जो व्यक्ति इलाज न कराये, उसका भी ज़बरदस्ती

करते हैं तथा कोई इलाजके दौरानमें मर जाय तो उसकी मौतका अपराध या मुकदमा-सजा उनपर नहीं लागू होता; क्योंकि यह अपराध नहीं सिद्ध होता । क्यों उन्होंने तो रोगीकी जान बचानेका प्रयत्न किया, मर गया तो अपनी मौतसे ! इन डाक्टरोंकी वैज्ञानिक शिक्षा-दीक्षा पाये बिना, अधिकार बिना जो इलाज करे, उसको ये अनाड़ी (Quack) कहते हैं और अपनेको डॉक्टर कहते हैं । अब जरा देखिये कि डाक्टर और अनाड़ी शब्दोंका अर्थ क्या है और इनका अर्थ वास्तवमें किन-पर प्रयुक्त होता है ।

‘क्वैक’ (Quack) (शब्द जर्मन) भाषाके ‘क्वैकसाल्वर’से आया है, जिसका अर्थ होता है क्विक सिल्वर अर्थात् पारा (पारद, विषाक्त धातु) । रोग दूर करनेके लिये दवाके नामपर पारदका प्रयोग रेचनके लिये करनेवाला सबसे पहला ‘क्वैक’ (अनाड़ी) पारासेल्सस (Paracelsus) था । इस ‘दवा’का घातक प्रभाव होता देख, लोगोंने इसका प्रयोग करनेवालोंको ‘क्वैकसाल्वर’ अर्थात् जहर (पारद) देनेवाले डॉक्टर कहना प्रचलित कर दिया, जो संक्षिप्तरूपमें ‘क्वैक’ बनकर प्रचलित हो गया । अतएव अपने रोगियोंको पारद-समान जहरकी दवा देनेवाले ही ‘क्वैक’ अर्थात् अनाड़ी हुए । आजकी दुनियामें वास्तवमें मेडिकल साइन्सके ठेकेदार अधिकृत डाक्टर ही हैं; क्योंकि वे दवाके रूपमें जहर देते हैं । जो स्वयंको वैज्ञानिक चिकित्सक, साइंटिफिक फिजिशियन कहते हैं और जो लोग उनके विज्ञानके बिना, जहरके बिना इलाज करते हैं, उनको ये ‘क्वैक’ कहें तो कितने अंधेरकी उल्टी बात है ! यदि व्यावहारिकरूपमें अर्थ देखें तो क्वैक वह व्यक्ति है, जो बात तो कुछ करे और काम कुछ करे; जो बीमारीको रोकनेकी बात करे किंतु बीमारीका बीज बोये और बीमारी पैदा कर दे; बीमारीको भगाने, अच्छी करनेकी बात कहे किंतु जहर देकर बीमारीको बदलकर दूसरी बीमारी बना दे और बीमारी बढ़ा दे । इसलिये आजके डाक्टर ही क्वैक कहलाने योग्य हुए । इसलिये कि इनके पास कोई निश्चित विज्ञान या सिद्ध अनुभवपूर्ण सिद्धान्त नहीं है, ये केवल नये-नये घृणित विषाक्त हत्यारे प्रयोग (Experiment) करते हुए खोज और इलाजके नामसे प्रचारकर अपना व्यवसाय बढ़ा रहे हैं । इनके प्रयोग, सिद्धान्त, साधन और तरीके समयान्तरसे बदलते रहते हैं, एक बातपर कायम नहीं रहते, नयी शोध करके पुरानी बातोंको छोड़ते जाते हैं, बचपनकी तरह ये मानव-जीवनसे खिलवाड़ करते हैं । इन आधुनिक दवा-रूपी जहरका प्रचार और धंघा करनेवालोंको डॉक्टर कहा

जाता है, परंतु डॉक्टरका अर्थ होता है—शिक्षक, आचार्य । इसके विपरीत ये तो जहर देते, छुरी से चीर-फाड़ करते हैं; फिर ये डॉक्टर कैसे हुए ? 'डॉक्टर' शब्द इनके लिये उपयुक्त नहीं, गलत है । यदि डॉक्टरका अर्थ शिक्षक है तो फिजिशियनका अर्थ क्या और वह कौन है ? ग्रीक भाषामें 'फिजिक' शब्दका आदिम अर्थ है प्रकृति, किंतु रिवाजमें इसका प्रयोग 'जुलाब देनेवाले' (विषाक्त प्रयोग करनेवाले) के लिये होने लगा । इशियनका अर्थ है—सीखा हुआ, शिक्षित; अतएव 'जहर देनेकी विद्या सीखा हुआ' व्यक्ति फिजिशियन हुआ और प्राचीनकालमें ऐसे व्यक्तिको 'डॉक्टर आफ फिजिक' की उपाधि दी जाती थी । फिजिशियन बनकर वह डॉक्टर (शिक्षक) न रहा; क्योंकि वह केवल जहर देता रहा; कोई जीवन-चर्याकी शिक्षा न देता था । और अब भी वही परिस्थिति है, अतएव ये डाक्टर कहलाने योग्य अधिकारी नहीं । शिक्षा देना और जहर देकर इलाज करना अलग-अलग विपरीत बातें हैं । इनको डाक्टर न कहकर फिजिशियन-विषवैद्य कहना चाहिये । साथ-ही-साथ फिजिशियनको मेडिकल मैन या मेडिसिन (औषधि) का धंधा करनेवाला भी नहीं कहा जा सकता । मेडिसिनका अर्थ होता है—रोगको नष्ट या शमन करनेवाली औषध; और जो ऐसी औषधका प्रयोग करे, वह मेडिकल मैन अर्थात् औषधोपचारक । परंतु यहाँ तो धंधा है—रक्त, मवाद, जहर देनेका, छुरी चलानेका ! मेडिसिन, औषध या भेषजके विषयमें वेदोंमें लिखा है—'अप्सु विश्वानि भेषजानि, अप्सु अमृतम् ।' वेदोंमें सूर्य-प्रार्थनाके मन्त्रोंसे प्रकाशकी जीवन-दायिनी, संजीवनी किरणोंका आह्वान किया गया है ! अतएव सूर्यकिरण, वायु और जल ही प्रधान भेषज हुए । अब इनके बदले आजकल वैज्ञानिक बनावटी एक्सरे, अल्ट्रावायलेट, इन्फ्रारेड, बिजलीप्रकाश, ऑक्सीजन और फ्लोरीन घुले पानीके प्रयोग होने लगे; अन्न-दूध-साग-फलोंपर तथा भूमिमें विषाक्त रसायनोंका मिश्रण और छिड़काव किया जाने लगा । अब कहाँ है औषधि और भेषज, कहाँ है डाक्टर ? सर्वत्र विषदाता, विष-प्रसारक जबरदस्त योजनाएँ ! डाक्टर, फिजिशियन, मेडिसिन—सब धोखेबाजीके शब्द उल्टे अर्थोंमें प्रयुक्त हो रहे हैं । दुनियाको बेवकूफ बनाया जा रहा है । रक्त, मवाद, कीटाणु-बीजरोपण, विषप्रसारको भेषज और रोगनिरोधक उपचार कहा जा रहा है । कैसा अन्धविज्ञान ! इसलिये रोग बढ़ रहे हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण । और उनके लिये अधिकाधिक विष-प्रयोग ।

अनजाने पाप

आप भले ही पेनिसिलिन या एंटीबायोटिक अन्य दवाइयों

न खायें, इंजेक्शन न लें; फिर भी ये सब आपके पेटमें जाती हैं और रक्तमें घुलकर आपमें रोग प्रकट करती हैं । यह कैसे ! आपको नहीं मालूम । यदि आप भारतके गाँवोंमें या जंगलों रहकर गो-पशुपालन करके, खेती-बाड़ी करके अन्न-दूध-साग-फल प्राप्त करें, शुद्ध जलवायु पायें, तभी आप इनसे बचे रह सकते हैं, अन्यथा नौकरी व्यवसाय करते हुए आपकी खैर नहीं । बाजारमें विदेशी अनुदानके सस्ते अनाजकी दुकानोंसे आप अन्न खरीदें, दूध लें, साग-फल खरीदें; उनमें छिपे रूपसे क्या मिश्रित किया गया है, आप बिल्कुल नहीं जानते । इंग्लैंडके प्रसिद्ध डाकटरीपत्र 'लान्सेट' के १५ फरवरी १९५८ के अङ्कमें 'दूधमें मिश्रित पेनिसिलिन' की चर्चा छपी है, जिसके पीनेवालेको चर्मरोग हो गया था । अमेरिकामें गायोंको पेनिसिलिन-का इंजेक्शन दिया जाता है, उनके दूधका तीन दिनतक उपयोग निषिद्ध रहता है, अतएव ब्रिटेनमें भी ऐसा ही करना चाहिये । अमेरिकामें एक हजार टन पेनिसिलिन प्रतिवर्ष बनता है । वह सब भोजन-सामग्री-निर्माताओं, विक्रेताओं और पशुरोग-निरोधके लिये बेचा जाता है । एक किसान गायको रोग-निरोधके लिये पेनिसिलिन दो सालतक देता रहा; उसका दूध स्वयं पीता और दूसरोंको बेचता रहा ।' इंग्लैंडकी जनताने यह समाचार पढ़कर अपने चुने हुए पार्लियामेंटके मेम्बरसे पूछा कि 'दूधमें मिश्रित पेनिसिलिनका क्या अनुपात होता है और दूध पीनेवालोंपर उसका क्या असर होता है ?' पार्लियामेंट मेम्बरने यह प्रश्न हेल्थ मिनिस्टरसे पूछा तो बताया गया कि यह बात बताना मिल्कमार्केटिंग बोर्डकी नीतिके विरुद्ध है The Minister replied that it was a breach of the orders of the Milk Marketing Board for farmers to dispose of the milk from cows undergoing penicillin treatment and pointed out how difficult it was for the authorities to detect contravention of the order..... as milk was mixed in bulk the penicillin would be highly diluted. मिल्कमार्केटिंगबोर्ड कितने रुपयोंकी पेनिसिलिन खर्च करता है और विज्ञापन करता है—दूध खूब पियो । इसपर ब्रिटिश मेडिकल जर्नलके १५ अप्रैल १९५८ के अङ्कमें टिप्पणी छपी थी कि यह बात स्वयं डाक्टरोंको नहीं मालूम । विष-व्यवसायकी यह कितनी घातक नीति है !

लन्दन 'टाइम्स', १२ अप्रैल १९५८ में एक डाक्टरने लिखा है कि आजकल तीन बीमारियाँ बहुत बढ़ रही हैं और इनसे मौतें भी बहुत हो रही हैं—पुरानी खॉसी, फेफड़ोंका कैंसर

और हृदय तथा मस्तिष्कको पहुँचनेवाली नाड़ियोंके रोग । ब्रिटेनमें पुरानी खॉसीसे तीस हजार, कैंसरसे बीस हजार और हृदय-रोगसे अस्सी हजार लोगोंका प्रतिवर्ष मरनेका औसत है । दवाएँ केवल थोड़ी देरके लिये पीड़ा भुला देती हैं । विदेशोंसे मृत्युपर अथवा दानरूपमें भारतमें आनेवाले दूध-पाउडर आदिका आपपर क्या असर हुआ, कोई बता सकता है ?

जैसे लुहार-बढ़ई लोहे-लकड़ीकी बिगड़ी मशीनों और फर्नीचरकी टूट-फूट दुरुस्त करते हैं, वैसे ही बिगड़े शरीरकी रेंगाई-धुलाई, काट-पीट, मरम्मतका काम डाक्टर-सर्जन करते हैं । टांसिल, अपेंडिक्स, हर्निया, प्रोस्टेट, किडनी, गर्भाशयके आपरेशन करानेका यह सभ्यरोगोंका जमाना इस वैज्ञानिक व्यवसायको खूब धनसे सँचकर, स्वयं अपंग होता जा रहा है । ब्रिटेनमें प्रतिवर्ष दो लाखसे अधिक बच्चोंके गलेमें छुरी चलती है, टांसिल कटते हैं, चार हजार बच्चे रोज अस्पतालोंमें बिस्तर पकड़े रहते हैं । मस्तिष्कके भी आपरेशन (Anterior leucotomy) होते हैं, जिसमें मस्तिष्कके श्वेत तन्तु (White fibres) कट जानेसे मनुष्यके व्यवहार-बर्ताव बिल्कुल बदल जाते हैं । इंग्लैंडकी 'सेंट्रल कौंसिल फार हेल्थ एजुकेशन' ने हर्निया आपरेशनका प्रचार करनेके लिये गुटका छापकर पुस्तकालयों, वाचनालयों, डाक्टरों आदिको बाँटा है—'आपका हर्निया भी आपरेशनसे अच्छा हो सकता है; थोड़ी कमजोरी भले आ जाय, परंतु कम उम्रके लोग बिल्कुल अच्छे हो जाते हैं ।' इसपरसे विख्यात डाक्टरी समाचार पत्र 'लान्सेट' ८ फरवरी ५८ के अङ्कमें एक अनुभवी सर्जनने अन्य सर्जनोंके अनुभवपूर्ण लेखोंके प्रमाणसहित लिखा है और चेतावनी दी है कि 'हर्नियाका आपरेशन एक बार कर देनेपर ७५ प्रतिशत लोगोंमें हर्निया पुनः होनेकी सम्भावना रहती है । ५५ प्रतिशत लोगोंको दो सालपर, ७५ प्रतिशतको पुनः पाँच वर्षबाद, ८५ प्रतिशतको दस वर्षमें और किसी-किसीको आपरेशनके चालीस वर्ष बाद भी पुनः हर्निया हुआ है । मानव-शरीर लोहे-लकड़ीकी मशीन या फर्नीचर नहीं है; उसपर छुरी चलाना, सुई चुभाना या दुर्गन्धित रंगीन विषाक्त गोली, कैप्सूल, मिक्सचर डालना उसपर लगातार आघात करना है । आजकल बाजारमें जितनी सब नयी चमत्कारिक विषाक्त दवाइयाँ प्रचलित हैं, दस वर्ष पहले ये नहीं थीं और हर साल नयी जादुई गोलियाँ बनकर निकल रही हैं, इंजेक्शन पैदा हो रहे हैं—प्रयोगशालाओंसे, डाक्टरोंके दिमागसे । अमेरिकाके जन-स्वास्थ्यविभागने, जहाँ इन प्रयोगशालाओं और वर्षोंका भंडार है, घोषित किया है कि बहुत

वर्षोंके शोध-प्रयोगके बाद इन्फ्लुएंजाके लिये इंजेक्शन ही एक उपाय मिला है; अब यदि कोई औषध-निर्माता फट्टेके लिये किसी नयी दवाको 'नयी ईजाद' कहकर झूठा भ्रामक प्रचार करेगा, उसपर फौरन सरकारी कार्रवाई की जायगी ।

कुछ समय बाद 'लन्दन टाइम्स' में १४ जनवरी ५८ के छपे समाचारसे इस सरकारी घोषणाका भंडा-फोड़ हो गया, जब कि इन्फ्लुएंजाके इलाजमें उल्टा असर हुआ, अस्पतालोंमें बीमारी फैली, लोग मरने लगे, अस्पतालके अधिकारी परेशान हो गये । पेनिसिलिन जातिकी अन्य एन्टिबायोटिक दवाएँ देनेका समय ही न मिलता, लोग मर जाते । फट्टेकीटाणु २४ घंटेमें लोगोंको मार डालते । "Deaths took place so quickly that treatment would probably have had no chance. Young and old died from the infection, and the germ responsible for infection could kill in 24 hours."

एशियासे फट्टा कीटाणु उड़ा तो पश्चिमी लोकके वैज्ञानिकों और सरकारोंके दिल-दिमागमें तूफान मच गया । 'वार्शिंगटन पोस्ट' के २७ अक्टूबर १९५७ के अङ्कमें बताया गया है कि अमेरिकी जनस्वास्थ्यविभागने छः बड़े रासायनिक कारखानोंको, अंडोंपरसे फट्टे कीटाणु विकसित करके फट्टेनिरोधक टीका बनानेका अधिकार दे दिया है । इस ठेकेमें रोज ढाई लाख अंडोंकी खपत हुई । इसपर सेन्फ्रान्सिस्को मेडिकल सोसायटीके विशेषज्ञोंकी एक बैठक हुई, जिसमें चर्चा हुई—शङ्का की गयी कि भेड़ियाघसानवृत्तिसे सबको टीका लगाना कोई बुद्धिमानी नहीं है । प्रोफेसर ऑव मेडिसिन, डा० रान्जने कहा—'यदि हम दस लाख लोगोंको यह टीका लगायेंगे तो फट्टेसे अधिक लोग बीमार होंगे और अधिक मरेंगे ।' संस्थाके सभापतिने कहा—'यह टीका लगानेकी प्रथा उन्मादरोग-जैसी मालूम होती है ।'

'जर्नल आफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन' ने भी इसके प्रति डाक्टरोंको चेतावनी दी कि 'इस प्रकार अंधा-धुंध टीका लगानेसे लोगोंकी तबीयतमें अनेक प्रकारकी हानिकारक प्रतिक्रिया हो सकती है ।' अंडे खिलाकर रोगके कीटाणुओंकी खेती करना, शोध करना, उनपर व्यापार करना, दुनियाको भोंदू बनाना—यही तो विज्ञान है । यदि इस विज्ञानसे कोई उन्नति होती है तो वह रोग बढ़ानेकी उन्नतिमात्र है । डाक्टरोंने रोगोंका अध्ययन किया है; वैज्ञानिकोंने कीटाणु और विषोंको पहचाना है, स्वास्थ्यको नहीं । ऐसी उन्नतिका साथ

सरकार देती है—इसे भोली अन्धविश्वासी जनता नहीं जानती, नहीं रोक सकती; क्योंकि रोगकी अपेक्षा दवा अधिक जहरीली और खतरनाक है।

दिमागमें बिजली

मानवशरीरके प्रत्येक तन्तु और कोषमें, रोम-रोममें मनका जंजाल सर्वव्यापक है। जैसा भोजन होगा, वैसा शरीर बनेगा और मनकी प्रवृत्ति होगी, परंतु मनका प्रभाव भी शरीरमें सर्वत्र होता है और मानसिक कारणोंसे भी रोग होते हैं। जर्मनी, आस्ट्रिया आदि यूरोपके अनेक देशोंके डाक्टर फ्रायड, जुंग, ऐडलर आदिने तन-मनके रोगोंके निदान और उपचारकी विशेष पद्धति प्रसिद्ध की और अब डाक्टरोंने बिजली, चुम्बक आदि यान्त्रिक पद्धतियों, दवाओं, इन्जेक्शन और चीर-फाड़से जेलखानों, पागलखानोंके कैदियों-पागलोंका इलाज आविष्कार-कर-प्रचलितकर अपना चमत्कार दिखाया, जिसपर सरकारकी भी छाप लग गयी। हिप्नाटिज्म-वशीकरण साधनद्वारा इलाज करना इंग्लैंडकी सरकार और डाक्टरी संगठनने मान्य कर लिया है। परंतु अब जेलखानों, पागलखानों, अस्पतालोंमें मानसिक रोगियोंका इलाज देखिये,—वही हाय-हाय और लाचारी, विषाक्त निर्दय प्रयोग। 'न्यूयार्क टाइम्स' २ मई १९५६ के अङ्कमें 'अमेरिकन साइक्याट्रिक एसोसिएशन' की रिपोर्ट छपी है, जिसमें इलाजके लिये अपनाये गये तरीकोंपर, इलीनाय स्टेट मानसिक चिकित्सा-संस्थाके संचालक डा० पी० वेलीने साफ दिल खोलकर निर्दय-निर्भय होकर अपनी परेशानीके उद्गार निकाले हैं। दुनियामें क्रान्ति होती है, जिससे व्यवस्थाओं और परिस्थितियोंमें उथल-पुथलसे परिवर्तन होता है; परंतु सब कुछ

शुभ उन्नति नहीं कहा जा सकता। मानसिक इलाजके लिये मस्तिष्कको चीर-फाड़कर विकृत बना देना इन्सानियतकी हत्या है; बिजलीके धक्के देना कोई समझदारीका इलाज नहीं, वरन् बारूदके पटाखों जैसा खिलवाड़ है। बिजलीके धक्कोंका मस्तिष्कके भीतर कोषोंपर कैसा क्या प्रभाव होता है, कोई भी मानसिक चिकित्सक स्वयं अनुभव लेकर स्पष्ट बताये। कौन जानता है? यह तो अपराधियोंपर अपराधका बदला लेनेके समान, दुःख-कष्ट, पीड़ा, सजा देनेके समान हुआ। ऐसे इलाजोंसे तो रोगी पागल पृथ्वीमें गहरे धँस जाते हैं। उत्तेजित पागलको बेहोशीके विषाक्त इन्जेक्शन देना, उग्र दवाएँ देना और उनपर अनेक निर्दय प्रयोग करना पशुवत् व्यवहार ही हुआ। ऐसे प्रयोगार्थ पशुओंकी चीर-फाड़ की जाती है। ये सब खतरनाक तरीके हैं। बढ़िया पौष्टिक सुखादु भोजन और व्यवहारसे मनुष्य प्रसन्न—स्वस्थ होता है और रूखे बेस्वाद बासी अरुचिकर नीरस भोजनसे वह अप्रसन्न और रस-रक्त विकृत होता है, कटु बातों और व्यवहारसे वह उत्तेजित—पागल हो जाता है। अतएव मानसिक रोगोंमें भोजन-व्यवहार-सुधार ही लाभकर सिद्ध हुआ है। यदि हमें मानवसमाजसे इस विकारको दूर करना है तो घृणित विषाक्त तत्त्वों और निर्दय अनिश्चित यान्त्रिक यातनाओंकी प्रथाको छोड़ देना चाहिये। दुनिया कितनी अज्ञ, भोली और अन्धविश्वासी है कि मानसिक यातनाके इलाजमें यन्त्रोंका उपयोग करनेवाले डाक्टरों और तरीकोंको चमत्कारिक इलाज मान लेती है और डाक्टर अपनी नयी क्रामातोंसे दुनियाको भोड़ बनाकर ठगते हैं। यन्त्रोंसे विचारों-भावोंको कौन बदल सकता है।

(क्रमशः)

मेरे मोहका सर्वथा नाश हो गया है

मैं अबतक शरीर और नामको अपना स्वरूप मानकर शरीर तथा नामसे सम्बन्धित पदार्थोंमें मेरापन, परायापन, राग-द्वेष करके सुखी-दुखी हुआ करता था और फलस्वरूप सदा-सर्वदा अपूर्णता, निराशा तथा कामनाकी आगसे जला करता था। अब मुझे यह प्रत्यक्ष भान हो गया कि मैं न तो शरीर हूँ, न नाम ही। मेरा तो नित्य-निरन्तर सच्चिदानन्दधन भगवान्से अभिन्न सम्बन्ध है, न मेरा कोई अपना है न पराया। सभी केवल भगवत्स्वरूप हैं। एकमात्र भगवान्के सिवा और कुछ है ही नहीं। अतएव मेरा राग-द्वेष नष्ट हो गया है। मैं अपूर्णता, निराशा तथा कामनाके क्षेत्रसे सर्वथा पृथक् हो गया हूँ। अब मैं नित्य सत्य आनन्दरूपमें ही सदा स्थित हूँ; क्योंकि मेरे मोहका सर्वथा नाश हो गया है।

आजकी शोचनीय प्रगति

(श्रीराम-कुटिया रेवदरसे)

आज संसारमें सब ओर 'प्रगति'का प्रबलरूपसे प्रसार है, इसीसे सर्वत्र विशेष-विशेष प्रगतिके लिये नयी-नयी योजनाएँ बन रही हैं और लौकिक उन्नतिमें केवल धनैश्वर्यकी वृद्धि ही नहीं, बल्कि सभी प्रकारकी उन्नतिके विशाल सुखकी आशासे अनवरत चेष्टाएँ हो रही हैं। इस प्रगतिका धर्म-शास्त्रों और पूर्वज महर्षियोंके द्वारा 'भविष्य-वाणी' रूपमें वर्णन है; जिसमें शोचनीय शब्दका प्रयोग किया गया है। जिसे समझकर बुद्धिमान् पुरुष अधर्म-प्रगतिका त्याग करके धर्माचरणमें प्रवृत्त होंगे।

नित जुग धर्म होहि सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे ॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

श्रीमद्भागवत और मानसोक्त शोचनीय प्रगतिका यहाँ कुल दिग्दर्शन कराया जाता है—

विरक्त

सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग।
बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूइ मुडाइ होहि संन्यासी ॥
तेइ अभेद बादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
परतिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ॥
बिप्र द्रोह परद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी ॥
असुभ बेष भूषन धरें अच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥

(मानस)

पाखण्डनिरताः सन्तो विरक्ताः सपरिग्रहाः ॥

(श्रीमद्भा० माहात्म्य १।३२)

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ॥

(भा० १२।२।५)

विश्लेषकल्पनातीतः समचित्तो विचारधीः।

योगयुक्तिं न जानाति स योगी किं करिष्यति ॥

(नीति)

भक्त

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के ॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोकनिज हाथ नसावहिं ॥
दम दान दया नहिं जानपनी। जइता परबंचनताति घनी ॥
आपु गए अरु तिन्हहु घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं ॥

(मानस)

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थं धर्मसेवनम्।

(भा० १२।२।७)

यस्य नास्ति स्थिरा वृत्तिः संलग्नः साधने यदि।

स्वयं स्वार्थवशीभूतः स भक्तः किं करिष्यति ॥

(नीति)

ब्राह्मण

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निजु धरमु बिषय लयलीना
बेचहिं बेद धर्म दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी ॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेऊ उधार तपी ॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता ॥

क्षत्रिय—(राजा, अधिकारी-वर्ग)

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अबसि नरक अधिकारी ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥
मुनितापस जिन्ह ते दुख लहहीं। ते नरस बिनु पावक दहहीं ॥

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।

मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल मुहुँ ॥

(मानस)

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहानुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥
(नीति)

ब्रह्मविद्वक्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्वृणैर्दस्युधर्मभिः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । २ । ८)

वैश्य (व्यापारी)

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिव भगति सुजानू ॥
जे नहिं साधु संग अनुरागे । परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
लोभी लंपट लोलुपचारा । जे ताकहिं परधनु परदारा ॥

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभवस करहिं बिप्र गुरु घात ॥
तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान ।
देव न बरषहिं धरनीं बणु न जामहिं धान ॥
(मानस)

धर्मे कर्मसमर्थो यः स वैश्यः किं करिष्यति ॥
(नीति)

शूद्र

सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानो । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहिं डाटि ॥
(मानस)

पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥
(श्रीमद्भा० १२ । २ । १३)

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
दुष्टबुद्धिर्नीचनीतिः स शूद्रः किं करिष्यति ॥
(नीति)

स्त्री

सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी । कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी ॥

गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी । भजहिं नारि परपुरुष अभागी ॥
छन सुख लागि जनम सतकोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहै जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥
कुलवंति निकारहिं नारि सती । गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सौभागिनी बिभूषन हीना । बिधवन्ह के सिंगार नबीना ॥
अबला कच भूषन भूरि लुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥
(मानस)

न दानैः शुष्यते नारी उपवासशतैरपि ।
न तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥
(नीति)

ब्रह्मचर्याश्रम

सोचिअ बटु निज व्रतु परिहरई । जो नहिं गुर आयसु अनुसरई ॥
जे सठ गुर सन इरिषा करई । रौरव नरक कोटि जुग परई ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी ॥
कवि वृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक व्रात न कोपि गुनी ॥
मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥
गुरसिष बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर तरक महुँ परई ॥

गृहस्थाश्रम

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे । परनिंदक जे जग मो बगरे ॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता । मति थोरि कठोर न कोमलता ॥
नारि बिबस नर सकल गोसाई । नाचहिं नट मरकट की नाई ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ॥

भणु बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग ।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥
(मानस)

तरुणीप्रभुता गेहे श्यालको बुद्धिदायकः ।
कन्याविक्रयिणो लोभाद् दम्पतीनां च कल्कनम् ॥
(श्रीमद्भा० मा० १ । ३३)

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥
(श्रीमद्भा० १२ । २ । ३)

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवनं निष्प्रयोजनम् ॥
(नीति)

शास्त्र और नीति

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद ग्रंथ ।
दंभिन्ह निज मति कलिप करि प्रकट किए बहु पंथ ॥
नहिं मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ॥
सब लोग बियोग बिलोक हए । बरनाश्रम धर्म अचार गए ॥
सब नर कलिपत करहि अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी । श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।
तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥

(मानस)

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । २ । १२)
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥
(गीता १६ । २४)

शिक्षण

वर्तमान शिक्षा धर्महीन, सहशिक्षा-दूषित, ब्रह्मचर्य-रहित, बाह्य, लौकिक-स्वार्थमय, सदाचारहीन, सनातन-रीतिरहित, विदेशीयभावापन्न, विलासोत्पादक, आडम्बर-वर्द्धक, बहुव्ययसाध्य, अयोग्य और कुस्थानीय है ।
अध्यापकगण भी प्रायः तरुण, अनुभवरहित, मौजी, शौकीन, व्यसनी और चञ्चलमतिके हैं । शिक्षाके क्षेत्र बहुत प्रकारके हैं, परंतु वे प्रायः सभी विदेशीवादी प्रभावयुक्त हैं । कुछ क्षेत्रोंमें तो हिंसा, अनाचार, अश्लीलताको खुला प्रोत्साहन दिया जाता है ।

विद्यार्थी भी विचित्र प्रगतिवान् हैं—

मानहिं मातु पिता नहिं देवा । साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
बादे खल बहु चोर जुआरा । जे लंपट परधन परदारा ॥
सुतमानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
(मानस)

कामी क्रोधी तथा लोभी खादुष्टझारकौतुकी ।
अतिनिद्रावशो यः स विद्यार्थी किं करिष्यति ॥
(नीति)

अमानवता

सोचनीय सब ही विधि सोई । जो नछाँदि छल हरिजन होई ॥
सब नर काम लोभरत क्रोधी । देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥
झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिखोदरपर जमपुर त्रास न ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । संतसंग हरिकथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी । बेद बिदूषक परधन स्वामी ॥
बयरु अकारन सब काहूसौं । जो कर हित अनहित ताहूसौं ॥
करहिं मोहबस नर अध नाना । स्वारथरत परलोक नसाना ॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं । सपनेहुं प्रभु परमारथ नाहीं ॥
नर तनु पाय बिषय मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान बिरोध अकारनहीं ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत कौ अनुजा तनुजा ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै । विनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥
लघु जीवन संबतु पंच दसा । कल्पांत न नास गुमानु असा ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं बिषयरत मंद मंद तर ॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
(मानस)

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥
(नीति)

धर्म

नहिं कलि धर्म न भगति बिबेक । रामनाम अवलंबन एक ॥
एहिं कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप व्रत पूजा ॥
कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
चलत कुपंथ बेद मग छाड़े । कपट कलेवर कलिमल भाँड़े ॥
जे जन्मे कलि काल कराला । करतब बायस बेध मराला ॥
अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
(गीता १८ । ३२)

सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते ।
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ॥
(श्रीमद्भा० माहात्म्य १ । ३१)

गति

विप्र माँगनेमें, विरक्त पुजवानेमें, स्त्री स्वतन्त्रतामें, वैश्य छूटनेमें, शूद्र उच्चपदाधिकारमें, नारी पुरुषपर शासन करनेमें, सभी मनुष्य परधन, परदार और अपमानमें गतिमान् हैं और सरकार सनातन धर्मको समूल उखाड़ने और अधर्ममूलक कानून बनानेमें तत्पर है ।

शूद्रप्रायेषु वर्णेषुच्छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ॥
अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सन्धिसु ॥

(श्रीमद्भा० १२ । २ । १४-१५)

प्रगति

नास्तिकता, अधार्मिकता, अर्थलोलुपता, पदलिप्सा, हिंसा, चोरी, झूठ, दम्भ, निर्दयता, राग, द्वेष, क्रोध,

लोभ, दम्भ, ईर्ष्या, इच्छा, वासना, जुआ, सुरा, मांस, मछली, अंडे, बीड़ी, होटल, रोग, व्यभिचार, वैद्य-डाकटरी, वकालत, भ्रष्टाचार, अनाचार, सिनेमा, चोर-बाजार, महँगाई, रिश्वत, मिलावट, कपट, छलछिद्र, अखबारपाठ, भाषा-प्रान्तजनित कलह, नये-नये राजनीतिक दल, फैशन, बेकारी, वर्णसंकरता, कलह, पार्टी, भोज, गोहत्या, हिंसा, उपाधि, मशीनरी, सड़क, कारखाने, धर्मनाशक कानून, प्रमाद, बेईमानी, अकर्तव्य-परायणता, उच्छृङ्खलता, देहासक्ति और भगवद्विमुखताकी प्रगति हो रही है । यह प्रगति वस्तुतः विकास तो नहीं, बल्कि स्पष्ट विनाशका ही पूर्वरूप है । मनुजो ! अज्ञाननिद्रासे जागो और भजनमें लगे—अनाचार-दुराचार-को त्यागकर । हरि कल्याण करेगा । 'मङ्गलायतनो हरिः ।'

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

अस्थिर जीवन

एक बुलबुलेका उठना ही जन्म-ग्रहण है ।
पुनः समाहित हो जाना ही दुःखद मरण है ।
जन्म-मरणके दो पाटोंमें बँधा बिचारा—
कितना है असहाय मनुज बेबस, अशरण है ॥ १ ॥

एक फूल जो खिला डालपर मोह रहा मन ।
मँडराते जिसपर असंख्य रहते हैं अलिंगन ।
नियति-करोंसे वही तुरत मिट्टीमें मिलता—
कितना अस्थिर हाय ! पुष्प-सा मानव-जीवन ॥ २ ॥

एक ओर फिर रही बधाई, बजती है शहनाई ।
और दूसरी ओर चिता जाती है मौन सजाई ।
अथ-इतिका क्रम सदियोंसे यों ही चलता है आया—
कहीं किसीका दीप बुझा तो व्याप्त कहीं अरुणाई ॥ ३ ॥

—गणेशदत्त सारस्वत, एम्. ए०

चन्द्र-परीक्षा-रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक ।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक ॥

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी । परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी । ससि कैसरी गगन बनचारी ॥
बिथुरे नम मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥
मारोउ राहु ससिहि कह कोई । उर महुँ परी स्यामता सोई ॥
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा । सार भाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं । तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं ॥
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
विष संजुत कर निकर पसारी । जारत बिरहवंत नर नारी ॥

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास ।
तव मूर्ति बिषु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥
पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे राम सुजान ॥

(रामचरितमानस लङ्का ० १२)

पूर्व दिशाकी ओर देखकर चन्द्रमाको उदित हुआ देखा, (तब) प्रभु श्रीरामजी सबसे कहने लगे कि 'चन्द्रमाको देखो, यह सिंहके समान (कैसा) निःशंक है ! यह (चन्द्रमारूपी सिंह) पूर्व दिशारूपी पहाड़की कन्दराका रहनेवाला है; यह परम प्रताप, तेज और बलकी राशि है । अन्धकाररूपी मतवाले हाथीके सिरके उभरे हुए उभय भागोंको विदीर्णकर यह चन्द्रमारूपी सिंह आकाशरूपी वनमें विचरता है । आकाशमें छिटके हुए तारागण (उस मत्त-नागके सिरके) मुक्तासमूह हैं, जो रातरूपी सुन्दरी स्त्रीके शृङ्गाररूप हैं ।' प्रभु श्रीरामजीने कहा कि 'भाइयो ! चन्द्रमामें जो श्यामता है, वह क्या है ? अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कहो ।' श्रीसुग्रीवजीने कहा कि 'हे रघुराज श्रीरामजी ! सुनिये, चन्द्रमामें पृथिवीकी छाया पड़ी हुई है, वही प्रकट दीख रही है ।' किसीने कहा कि 'राहुने चन्द्रमाको मारा है, वही काला धब्बा उसके हृदयपर पड़ा हुआ है (भारी चोट लगनेपर उस जगह काला चिह्न पड़ जाता है) ।' किसीने कहा कि 'जब ब्रह्माजीने कामदेवकी स्त्री रतिका मुख बनाया, तब उन्होंने चन्द्रमा (के मध्य) का सार भाग निकाल लिया ।

वही छिद्र चन्द्रमाके हृदय-स्थलपर दीखता है, उस छिद्रकी राहसे (उस पार) आकाशकी (नीली) परछाई उसमें देख पड़ती है ।' प्रभु श्रीरामजीने कहा कि 'विष चन्द्रमाका अत्यन्त प्यारा भाई है, इसीसे उसने उस विषको अपने हृदयमें निवास दिया है । इसीसे विषसंयुक्त अपने किरण-समूहको फैलाकर वह विरही स्त्री-पुरुषोंको जलता है ।' श्रीहनुमानजीने कहा—'हे प्रभो ! सुनिये, चन्द्रमा तो आपका प्यारा दास है; आपकी (साँवली) मूर्ति चन्द्रमाके हृदयमें निवास करती है, वही श्यामता झलकती है ।' पवनकुमार श्रीहनुमानजीके वचन सुनकर सुजान श्रीरामजी हँसे ।

विशेष—ऊपर दोहेमें सुबेलकी झाँकीमें ध्यान-क्रम कहा गया कि प्रभु श्रीरामजी कोमल पत्तों और पुष्पोंकी शय्याकी रुचिर मृगछालापर लेटे हुए हैं । श्रीसुग्रीवजीकी गोदमें अपना सिर दिये हुए हैं । वे पूर्वमुख बैठे हैं, श्रीविभीषणजी प्रभुके दाहिने कानके पास हैं और उन्हींकी दाहिनी बगल अङ्गदजी तथा उनके सम्मुख एवं प्रभुकी बायीं ओर चरण दाबते हुए श्रीहनुमानजी बैठे हैं ।

यहाँका 'रुचिर मृगछाला' वही है, जिसके लिये श्री-जानकीजीने 'सत्यसंध प्रभु'से काङ्का की थी, मृगवध करके लौटते हुए वह मृगचर्म प्रभुने लक्ष्मणजीके हाथमें दे दिया था । आश्रमपर आनेपर श्रीजानकी-हरण होनेपर लक्ष्मणजीने उस चर्मको छिपा रक्खा था कि प्रभुको उसे देखकर विरह उद्दीप्त होगा । यहाँ शत्रुके समक्ष आनेपर उन्होंने उसे बिछा दिया । प्रभुको विरह उद्दीप्त हुआ, तब प्रभुने कुछ रूठे हुए सखा सुग्रीवको मनानेका अभिनय किया—उनकी गोदमें सिर रख दिया । श्रीसुग्रीवजीकी सलाह 'राखिअ बाँधि' यह विभीषण-शरणागतियोंमें नहीं मानी गयी थी । तबसे वे बोलते ही न थे । गोदमें सिर रखनेपर श्रीसुग्रीवजी प्रसन्न तो हो गये; उसीपर तो प्रभुने दाहिने-बायें फेंके हुए धनुष-बाणको ग्रहण किया है; बाण सुधारने लगे हैं । परंतु उनका न बोलनेका मान छुड़ाकर कुछ बोलना चाहते हैं, इसीपर यह मृग-लाञ्छन-विषयक प्रश्न छोड़ा गया है—

कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई । कहहु काह निज निज मति भाई ॥

इसपर प्रथम श्रीसुग्रीवजी ही बोले हैं; यथा—
 कह सुग्रीव सुनहु रघुआई । ससि मँहँ प्रगट भूमि कै झाँई ॥
 देखिये, पहले सेतुबन्धविषयक प्रश्नपर सुग्रीवजीका नाम
 लेकर पूछा जानेपर भी ये नहीं बोले थे । इस बार समष्टिमें
 सब सखाओंके प्रति प्रश्न है, तब भी इन्होंने पहले ही बोल-
 कर अपनी पूर्ण प्रसन्नता प्रकट की है ।

यहाँ सुग्रीवजीने अपने हृदयकी परिस्थितिके अनुसार कहा है ।
 इन्हें अपनी छीनी हुई भूमि प्राप्त हुई है और यों भी राजाकी
 वृत्ति भूमि बढ़ानेपर रहती है । इससे इनके हृदयपर भूमिकी
 छाया पड़ी हुई है, वही चन्द्रमामें भी देख रहे हैं । चन्द्रमा
 सबके मनका देवता भी है—‘मन ससि चित्त महान ।’
 (लङ्का० १५) ; इससे चन्द्र-विषयक प्रश्नसे श्रीरामजी
 सबकी मनोवृत्ति भी परख रहे हैं, तदनुसार आगे इनसे
 रक्षणके उपाय भी पूछेंगे ।

यह पहला उत्तर हरिवंशके अनुसार है । भास्कराचार्य
 आदि प्राचीन ज्योतिषकारोंका भी यही मत है, ये चन्द्रमाको
 जलमय मानते हैं । उसमें पृथिवीकी अप्रकाशित (श्याम)
 छाया पड़ती है, वही श्यामता दीखती है ।

आगे सुग्रीवजीके दाहिने बैठे हुए श्रीविभीषणजीका
 मत कहा जाता है—

‘मारैउ राहु ससिहि कह कोई ।’—यहाँ ‘कोई’से
 विभीषणजीका मत है । इन्हें रावणने लात मारी थी, यह
 इन्होंने कुम्भकर्णसे स्वयं कहा है—‘तात लात रावन मोहि मारा ।’
 (लङ्का० ६३) ; उसकी चोट इनके हृदयसे नहीं गयी ।
 आगे भी इसके बदले ये उसकी छातीपर गदा-प्रहार करेंगे—
 लङ्का० ६३ देखिये । इससे यहाँपर इन्होंने मनके देवता
 चन्द्रमाके चिह्नरूपमें अपनी मनोवृत्ति ही कही है ।

‘कोउ कह जब बिधि...सार भाग’—यहाँकी झाँकीके
 क्रमसे यहाँ ‘कोउ’ पदमें श्रीअङ्गदजीके बोलनेकी पारी है ।
 यहाँके भाव भी उन्हींमें घटित हैं । वालीके पश्चात् उसके
 राज्यपर श्रीअङ्गदजीका अधिकार था । यथा—

संस्कार्यो हरिराजस्तु अङ्गदश्चाभिषिच्यताम् ।
 सिंहासनगतं पुत्रं पश्यन्ती शान्तिमेष्यसि ॥

(वाल्मी० ४ । २१ । ११)

श्रीहनुमान्जीने ताराको समझाते हुए कहा है
 कि (मृत) वालीका संस्कार करना चाहिये; फिर तुम अङ्गद-
 जीका अभिषेक करो और सिंहासनपर बैठे हुए पुत्रको देखकर
 शान्ति पाओगी ।’

पर रामजीने श्रीसुग्रीवजीको राज्य दिया है
 वह केवल युवराज ही बनाया गया है; यही अङ्गदके
 सार भागका हरा जाना है । इससे हृदयमें अभावरूप मानो
 छेद हो गया है, उससे आगेके लिये ‘नभ परिछाहीं’ अर्थात्
 शून्यता ही प्रतीत होती है कि जब कहीं सुग्रीवजीके पुत्र
 होगा, तब वे मेरा यौवराज्य क्यों रहने देंगे । यथा—

राज्ये पुत्रः प्रतिष्ठाप्यः सगुणो विगुणोऽपि वा ।
 कथं शत्रुकुलीनं मां सुग्रीवो जीवयिष्यति ॥’

(वाल्मी० ४ । ५५ । ८)

(अङ्गदजीने समुद्रतटपर प्रयोपवेशनके समय कहा है
 कि) ‘चाहे गुणवान् हो और चाहे गुणहीन हो, राज्यपर
 राजाका पुत्र ही बैठाया जाना चाहिये; इस नियमके अनुसार
 श्रीसुग्रीवजीके जब पुत्र होगा, तब मुझ शत्रु-कुलवालेको वे
 क्यों जीने देंगे ।’

यहाँ अङ्गदजीके हृदयका भाव इन वचनोंमें आया है ।

‘कह प्रभु गरल बंधु...विष संजुत’—श्रीअङ्गदजीके पीछे
 श्रीहनुमान्जीको बोलना चाहिये, पर प्रभु बीचमें ही बोल उठे;
 क्योंकि प्रभुने चन्द्रमाको निःशङ्क आदि कहकर उसके हृदयकी
 श्यामतापर प्रश्न किया था । विरहके कारण प्रभुको वह प्रतिकूल
 भास रहा है । इससे आप उसके दोष पूछ रहे हैं; परंतु तीन
 मन्त्रियोंने अमल, चोट खाया हुआ और सार छीना हुआ
 कहकर उसे दीन एवं निर्दोष कहा । अतएव अपना अभिप्राय
 प्रकट कहकर अवशिष्ट मन्त्री श्रीहनुमान्जीको अपने अनुकूल
 करना चाहते हैं । इससे कहते हैं कि विष चन्द्रमाका सहोदर
 भाई है; क्योंकि एक ही क्षीरसागरके मन्थनसे दोनों प्रकट हुए
 हैं । भाई प्यारा होता ही है । यथा—

भाइहि	भाइहि	परम	समीती ।
सकर	दोष	छल	बर्जित प्रीती ॥

(वाल्मी० १५३)

अतिप्रिय वस्तु हृदयमें सदा रहती ही है, इसीसे विष
 चन्द्रमाके हृदयमें है । वही काला सा देख पड़ता है । विषमय
 अपनी किरणोंसे मुझ विरहीको जला रहा है । यह भाव भी
 गर्भित है कि इस चन्द्रमाके पिता सागरपर मैंने जो सेतु बाँधा
 है, उसके सम्बन्धका वैर मानकर अपने भाई विषके साथ
 मुझे जला रहा है ।

चन्द्रमा अमृतमय है, पर विरहके कारण प्रभुको विषमय
 भास रहा है । यहाँ बहिरङ्ग रीतिमें प्रभुका भाव यह कि मन्त्री-
 लोग भी इसका दोष सिद्ध करें तो मैं अभी ही इसकी

निश्चाङ्कता धूलमें मिला दूँ, हाथमें लिये हुए एवं दुलराये हुए बाणसे इसीकी असली चौदमारी कर दूँ ।

पूर्व मन्त्रियोंकी रीतिसे प्रभुने भी अपनी हृदयवृत्ति कही कि श्यामरूपमें चन्द्रमाका प्यारा भाई विष बसा है । साथ ही प्रभुके हृदयमें श्याम-विग्रह अतिप्रिय भाई भरत बसे हुए हैं, यह भी सूचित किया ।

‘कह हनुमंत सुनहु प्रभु...’—यहाँ ‘प्रभु’ पदका भाव यह कि आप परम समर्थ हैं; अतः अमरोंको भी मारकर फिर उसे जिला भी सकते हैं । यथा—

प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई ।
(लङ्का० ११३)

पर यह चन्द्रमा तो आपका प्यारा दास है, इसीसे यह आपकी श्याममूर्त्तिको (परमात्मभावसे) हृदयमें बसाये रहता है, इसमें वही यह श्यामता झलक रही है ।

श्रीहनुमान्जी प्रभु श्रीरामजीके प्रिय दास हैं, इससे ये प्रभुकी मूर्त्तिको सदा अपने हृदयमें बसाये रहते हैं । यथा—

प्रनवउँ पवनकुमार...जासु हृदय आगार बसहि राम...
(बाल० दो० १७)

अपनी ही भाँति ये दूसरोंको भी देखते हैं, इसीसे चन्द्रमाके हृदयमें भी वैसा ही मानते हैं । श्रीहनुमान्जी ‘ज्ञानघन’ हैं, ज्ञानीका मन इन्द्रियोंके साथ उसका दास बना रहता है । वैसा ही कह रहे हैं । प्रभु भी अखण्डज्ञान हैं । यथा—

‘ग्यान अखंड एक सीताबर ।’
(उत्तर० ७८)

इससे उनका मनरूप चन्द्रमा तो उनका प्रिय दास है ही; यथा—

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
(लङ्का० १५)

ऊपर लिखा गया कि प्रभु विरहीका अभिनय कर रहे हैं, तदनुसार वे चन्द्रमाकी अमृतमय किरणोंको विषमय मानकर उसपर क्रुद्ध हो उसका दोष सिद्धकर उसपर बाण चलाना चाहते हैं । सभी मन्त्रियोंने उसे निर्दोषी ही कहा । वैसे ही श्रीहनुमान्जीने भी प्रिय दास कह उसकी रक्षा कराया ।

किंतु श्रीहनुमान्जी दक्षिण-मुख बैठे हैं, इससे नाच-रङ्ग देखता हुआ रावण उनके सम्मुख है । अतः चन्द्रमापरसे प्रभुकी दृष्टि हटाकर उन्होंने रावणकी ओर संकेत किया कि विरहका

कारण तो रावण है । अतः इस बाणका प्रयोग उसपर होना चाहिये । इसपर साथ ही कहा गया है—

पवनतनय के बचन सुनि विहँसे राम सुजान ।
दक्षिण दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान ॥

बस, तुरंत प्रभुने दक्षिण दिशाकी ओर देखा और फिर श्रीविभीषणजीसे उसका भेद लेकर उस बाणका उसपर ही प्रयोग किया । उससे तुरंत उसका छत्र, मुकुट और मन्दोदरीका श्रवण-ताटङ्क काटकर गिरा दिया । इससे रावणका छत्र भंग किया, सिर काटा और मन्दोदरीको विधवा बनाया । पीछे लीला-विधिके लिये एक महीना युद्ध करके भी उस कार्यको सम्पन्न किया । पर प्रभुने मानो अभी ही उसका गर्व चूर्ण कर दिया ।

‘कृपा निधान’—भाव यह कि रावणपर भी कृपा ही है कि वह अब भी मेरे बाण-प्रतापको समझकर यदि शरण हो सके तो बच जाय ।

यह तो हुई बहिरङ्ग-विवेचना; किंतु इस चन्द्र-परीक्षणमें पारमार्थिक भाव भी बड़े रहस्यपूर्ण हैं, उनका भी कुछ विवेचन किया जाता है—

पारमार्थिक रहस्य

यहाँपर श्रीरामजीने इन प्रिय सखाओंकी मनोवृत्तियोंको जाना है, फिर युद्धोपरान्त इनके संशोधनकी व्यवस्थाएँ की हैं । श्रीसुग्रीवजी परमार्थ पक्षमें ज्ञानस्वरूप हैं, इसीसे ज्ञानमय सूर्यके पुत्र कहे जाते हैं । श्रीविभीषणजी जीवस्वरूप और श्रीहनुमान्जी प्रबल वैराग्यस्वरूप हैं । समस्त वानर शम-दम आदि साधनस्वरूप और उनके नेता श्रीअङ्गदजी सत्त्वगुण-रूप हैं । यथा—

‘ज्ञान सुग्रीवकृत जलधिसेतू ।...जीव भवदंघ्रि सेवक विभीषण...प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय...कैवल्यसाधन अखिल भालु मर्कट...’ ॥
(विनय-पत्रिका ५८)

यहाँ श्रीसुग्रीवजीने मनरूप चन्द्रमाके लक्ष्यपर अपने हृदयपर भूमिकी छाया कही है । युद्धोपरान्त (उत्तर० दो० १६ में) श्रीरामजीने विदा करते हुए इन्हें श्रीभरतजीसे भूषण-वस्त्र पहनवाकर (अर्थात् इन्हें भरतजीका सारूप्य देकर) किष्किन्धा राज्य करनेके लिये भेजा है, जिससे इनके हृदयका शोधन हो और अन्तमें मेरा परिकरत्व प्राप्त हो । नित्यधाममें ये साथ रहें—उसी प्रकार जैसे श्रीभरतजीने श्रीराम-वियोगमें चौदह वर्ष रहकर फिर परिकर-भाव राम-राज्याभिषेकपर प्राप्त किया ।

पृथिवीके अंशसे ही बुद्धिकी उत्पत्ति कही गयी है;
यथा—

‘बुद्धिर्जाता क्षितेरपि ।’ (जिज्ञासापञ्चक)

बुद्धिके द्वारा ज्ञान होता है । बुद्धिका ज्ञातृत्वाभिमान ही यहाँ उनके हृदयपर भूमिकी छाया है । श्रीभरतजी परम विवेकी हैं; उनकी माताने उनके लिये भूमिका भोग माँगा था, पर अपनी विवेकमय वृत्तिसे वे उसके वरदानको पूरा करके भी निर्विकार बने रहे । वैसी वृत्तिसे रहनेके लिये सुग्रीवजीको भरतजीका सारूप्य देकर भेजा गया कि उनकी प्रकृतिरूपी माताद्वारा नियत हृदयपर ज्ञातृत्वाभिमान की छाया शुद्ध हो ।

श्रीविभीषणजी जीवस्वरूप हैं; इन्हें पूर्व जन्ममें कालकेतु-रूपी राहुने हरण करके इस राक्षस-योनिमें प्राप्त कराया था । यथा—

जनु बन दुरेड ससिहि प्रसि राहू ।
(बाल० दो० १५५)

उसी काल-बाधाके भावको इन्होंने ‘भारेड राहु ससिहि’... यह ऊपर कहा है । श्रीमद्भागवत २।५। २१-२२ में भी सृष्टिमें मूल कारण काल ही कहा गया है । जीव काल-बाधासे ही संसारमें जन्मता-मरता है । इस बाधासे रक्षाके लिये इन्हें आगे (उत्तर० दो० १६ में) श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणजीके द्वारा भूषण-वस्त्र पहनाकर (श्रीलक्ष्मणजीका सारूप्य देकर) लङ्कामें श्रीलक्ष्मणजीकी-सी वृत्तिसे रहनेके लिये भेजेंगे कि आयु-पर्यन्त वहाँ प्रभु-सेवा-परायण होकर रहें; तब फिर इन्हें काल-बाधा नहीं व्याप्त होगी । यथा—

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही ॥
(उत्तर० दो० ८७)

तथा—

मन्त्रका यान्ति मामपि ।
(गीता ७। २३)

एवं—

मासुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥
(गीता ८। १५)

श्रीविभीषणजीका बाह्यभाव तो चन्द्रमापर राहु-प्रहार कहनेका रावणके लात मारनेसे था । उस भावकी सान्त्वना तो श्रीरामजीने वहाँ सुबेलपर ही कर दी । रावणके छत्र, मुकुट और मन्दोदरीके ताटङ्क काटकर उसका नाश करना दिखा दिया है ।

श्रीअङ्गदजीने जो अपने सार भागके छीने जाने एवं भविष्यके लिये निराशाका संकेत किया था, उसके प्रति उनके रक्षार्थ श्रीरामजीने उत्तर० दो० १८ में अपने ही भूषण वस्त्र स्वयं पहनाकर (अपना सारूप्य देकर) उन्हें यह इज्ञित करते हुए भेजा कि श्रीसुग्रीवजी तुम्हें सदा मेरा ही स्वरूप देखेंगे तो तुम्हारा अधिकार नहीं हरण कर सकेंगे । पारमार्थिक दृष्टिसे श्रीअङ्गदजी सत्त्वगुणके स्वरूप हैं । सत्त्वगुणरूपी अङ्गदजीको ज्ञान-सुग्रीवका भय था कि कहीं वे मेरा स्वत्व न हरण करें । ज्ञानीमें सत्त्वगुणके प्रकाशसे ज्ञान होता है, वह प्रकाश श्रीरामजीका है । यथा—

सत्त्वं सत्त्ववतामहम् । (गीता १०। ३६)

यदि ज्ञानी अपने ज्ञान-प्रकाशका स्वयं अभिमानी होता है तो उसका सत्त्व विकारी होता है । यदि वह उसमें ब्रह्मका प्रकाश देखता रहता है तो उसका सत्त्वगुण निर्विकार रहता है । यदि श्रीसुग्रीवजी अङ्गदजीको श्रीरामरूप देखते रहेंगे तो उक्त रीतिसे अङ्गदजीको भय न होगा ।

शेष जाम्बवान् और नील आदि सब भालू-वानर श्रीअङ्गदजीके अनुगामी होनेसे सत्त्वांश ही हैं । अतः इन्हें भी श्रीरघुनाथजीने ही अपने भूषण-वस्त्र अपने ही हाथों पहनाकर भेजा—

‘कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट...’
(विनयपत्रिका ५८)

‘जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।’
(उत्तर० दो० १७)

अतः राम-दम आदि साधनोंमें भी ज्ञानीको श्रीरामजीका ही प्रकाश देखना चाहिये । तब ये साधन भी निर्विकार रहते हैं ।

श्रीहनुमानजीके हृदयमें यहाँके परीक्षणसे श्रीराम-भक्ति ही पायी गयी थी इसीसे इन्हें सबके साथ विदा नहीं किया गया ।

पाठकोंको इस विदाई-प्रसङ्ग (उत्तर० दो० १७-१८) में देखना चाहिये कि श्रीसुग्रीवजी और श्रीविभीषणजी बाह्य-दृष्टिसे राजा थे, इन्हें राजा श्रीरामजी पहनाते और अङ्गदादिको युवराज भरत एवं श्रीलक्ष्मणजी पहनाते, पर वैसा नहीं किया गया । इससे उपर्युक्त पारमार्थिक भाव ही यहाँ प्रधान है ।

राजनीतिकी दृष्टिसे श्रीरामजीने इनसे अपना युद्धकार्य लेनेके प्रथम ही इनके लोक-परलोकके पूर्ण संरक्षणकी व्यवस्था करके तब इनसे काम लिया और वैसा ही निबाहा । यह उत्तम स्वामित्व है ।

विज्ञानके उच्च अध्ययनमें देवभाषा संस्कृतका महत्त्व

(लेखक—डा० श्रीरवीन्द्रप्रतापरावजी प्राध्यापक, रसायन-विभाग, गोरखपुर-विश्वविद्यालय)

देवभाषा संस्कृत अनादिकालसे जगत्को अनुप्राणित करती आ रही है। ऐसी सजीव, सरल तथा धर्मार्थकरी और मोक्षकरी भाषा विश्वमें कोई नहीं है। युगोंसे जगत्के निवासी इस कामधेनुको दुहकर मनोवाञ्छित विद्याकी प्राप्ति करते आ रहे हैं। धन्य है भगवान्की लीलाओंका केन्द्र यह भारतवर्ष, जहाँपर संस्कृत-जैसी अनुपम भाषा तथा संस्कृतके श्लोकों, मन्त्रों तथा सूत्रोंमें वर्णित विश्वसंस्कृतिके प्रहरी आर्षग्रन्थ विद्यमान हैं। एक युग ऐसा था, जब विश्वके सारे निवासी संस्कृतमें ही परस्पर वार्तालाप करते थे तथा सर्वत्र संस्कृतका ही बोलबाला था। वही समय सत्ययुग कहलाता था। उच्चारण शुद्ध होनेके कारण उस समयके मन्त्र फलप्रद होते थे तथा ज्ञानके अक्षयस्रोत संस्कृत भाषाको पढ़-लिखकर ऋषिलोग मानव-कल्याणके निमित्त वैज्ञानिक, साहित्यिक, सामाजिक, नैतिक तथा अन्य आदर्शोंको लेकर अनेकार्थक शब्दावलीद्वारा ऐसे वाक्यों और कथाओंकी रचना करते थे, जो वाक्य अपने एक अर्थद्वारा यदि कोई कहनी कह रहे हैं तो दूसरे अर्थद्वारा किसी विज्ञान और तीसरे अर्थद्वारा इंजीनियरिंग अथवा अन्य विषयको बता रहे हैं। फलस्वरूप एक ही पुस्तकको कण्ठस्थ कर लेनेसे अनेक विषयोंका ज्ञान हो जाता था। उसी विद्यासे अपनेको विद्यावान् समझना चाहिये, जो (विद्या) कण्ठस्थ रहे। अतएव उस कालमें मन्त्र ऐसे बनाये जाते थे, जिनकी विभिन्न दृष्टिकोणोंसे व्याख्या करके उपर्युक्त सब प्रकारके विषयोंको समझा जा सके, अर्थात् जिनसे गागरमें सागर भरनेका काम होता था।

सदैव चिन्तनमें लीन रहनेवाले ऋषि-मुनियोंके अथक तथा अनुपम अन्वेषण-प्रियतासे हम सब प्रकारकी कलाओंके निष्णात आचार्य हुआ करते थे। नीचे हम कुछ ऐसे विषयोंके समर्थनमें प्रमाणस्वरूप शास्त्रों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंके उदाहरण देकर यह दर्शित करेंगे कि उसी समय ज्ञानके प्रत्येक क्षेत्रमें हमने इतनी उन्नति कर ली थी कि आज भी संसार वहाँतक नहीं पहुँच सका (यदि आत्मसंहारक भयंकर शस्त्रास्त्रों तथा ऐसे अन्य उपकरणोंकी बात छोड़ दी जाय)।

आधुनिक युगके वायुयानोंसे भी अच्छे प्रकारके विमान उस समय विद्यमान थे। भगवान् रामचन्द्रकी पुष्पक विमानद्वारा यात्राका वर्णन, प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर ही वाल्मीकि तथा तुलसीदासने किया है। अनवरत परिश्रमके

कारण आर्यलोग इस क्षेत्रमें इतनी प्रगति कर गये थे कि उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिये विमानकी भी आवश्यकता न रहने लगी और वे अपनेसे भी उड़कर जाने लगे। हनुमान्द्वारा लङ्कासे उड़कर द्रोण पर्वतपर जाना और जड़ी लेकर उड़ते हुए आना—आदि बातें इस बातका पूरा प्रमाण हैं। नारद मुनि इस विद्यामें इतने प्रवीण हो गये थे कि उन्हें एक लोकसे दूसरे लोकमें जानेके हेतु किसी साधनकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी और वे स्वयं वाञ्छित स्थानपर निमेषमात्रमें पहुँच जाते थे। उनकी यात्राओंमें किसी लोकविशेषकी आकर्षणशक्तिसे भी कोई बाधा नहीं पड़ती थी। शिव-पार्वती तथा अन्य देवोंका अपने निवासस्थानसे अन्यत्र बिना किसी साधनके पहुँच जाना इस बातका साक्ष्य है। कलियुगमें भी जगद्गुरु आदि शंकराचार्य उड़ करके ही प्रयागसे मण्डन मिश्रके यहाँ (काशी) पहुँचे थे। आजके स्पुतनिक और अग्निबाण अभी इस लक्ष्य-प्राप्तिकी प्रारम्भिक अवस्थाएँ हैं।

रसायनशास्त्रकी प्रगति तो एकदम पराकाष्ठाको ही पहुँच गयी थी। रस-रसायन इतना संतोषजनक कार्य करनेवाले होते थे कि उस समयके अत्युन्नत शल्य-विज्ञानकी भी कोई आवश्यकता न रही। संसार जल्लता है कि जब किसी प्रचलित विधिसे भी उत्तम चिकित्सा-विधि ज्ञानमें आ जाती है, तब लोग पहली विधिको भूलते जाते हैं। उदाहरणार्थ, पहले डाक्टरलोग कहते थे कि फल-सब्जी तथा तरकारी आदिको खूब उबालकर खाना चाहिये; जिससे उनमें विद्यमान रोगाणु विनष्ट हो जायें; परंतु जबसे विटामिनोंका आविष्कार हुआ, वे ही लोग कच्ची तरकारी, बिना उबाले फल आदि खानेपर ही विशेष जोर देने लगे। दहीको विदेशी वैज्ञानिक पहले 'श्वेत विष' कहा करते थे, परंतु आज वे ही लोग भारतीय आयुर्वेदके ऊपर अनुसंधान करनेके बाद दहीको अमृत मानने लगे हैं और यक्ष्मा-रोगीतकको प्रतिदिन दही खिलाने लगे हैं। इसी प्रकार सैकड़ों ऐसे दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, जिनमें ऐसा ही किया गया है। ऐसा न होता तो न कभी हवाई जहाज ही बनता और न स्पुतनिक ही। यही बात उस प्राचीनकालमें भी हुई और जब रस-रसायनोंके उपयोगसे ही फोड़े तथा घावोंको ठीक किया जाने लगा, तब शल्य-चिकित्साका कोई उपयोग न रहा। मानसिक शल्य-चिकित्सा (Mental Surgery),

जिममें कुछ दक्षता आजकलके लोगोंको प्रायः तीस वर्षोंसे हुई है, प्राचीन कालमें भारतमें विकसित मानसिक शल्य-चिकित्साका ही परिणाम है। यद्यपि प्राचीन कालके हमारे इंजीनियरिंग तथा स्थापत्यकलाके असंख्य उदाहरण प्रायः लुप्त-से हो गये हैं, फिर भी दिल्लीमें गड़ा हुआ लौह-स्तम्भ तथा अजन्ता, एलोरा आदिकी गुहाएँ हमारे प्राचीन रसायन-ज्ञान तथा इंजीनियरिंग-ज्ञानके अनुपम दृष्टान्त उपस्थित करती हैं। नालन्दा विश्वविद्यालयमें दस सहस्र छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे, जिनमेंसे प्रत्येकको अलग-अलग कमरा रहनेको दिया जाता था।

सामाजिक शासन-व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि अबसे कुछ शताब्दी पहले भारतके भ्रमणार्थ आनेवाले विदेशी यात्रियोंके समयमें भी पारस्परिक सद्व्यवहार तथा सदाचारकी पराकाष्ठा थी। लोग घरोंमें ताला ही नहीं लगाते थे। हंसकी तरह 'नीर-क्षीर' न्याय होता था। सब संतुष्ट थे। यदि ऐसा उस समय होता था तो उससे भी पहले अयोंकी उन्नतिके स्वर्णिम युगमें अवश्य ही सौगुनी खुशहाली रही होगी। यदि ऐसा न होता तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

—जैसी उक्तियोंका सर्जन ही उस कालमें क्यों होता ?

'नैषधीयचरितम्' में एक स्थलपर श्रीहर्ष कवि कहते हैं कि 'चन्द्रमामें जो गह्वर है, वहाँका सौन्दर्य-सार लेकर भगवान् ने दमयन्तीकी रचनामें लगा दिया।' भले ही यह उक्ति एक उपमा हो परंतु यह तो मानना ही पड़ेगा कि कविको चन्द्रमामें गह्वर होनेका ज्ञान था। वास्तवमें बात यह थी कि कविके रचना-कालके सहस्रों वर्ष पहलेसे ही प्रयोगद्वारा गह्वर होनेका पता लगा लिया गया था। कालान्तरमें वही ज्ञान इतना व्यापक हो गया कि सबकी स्मृतिमें रहने लगा। मनुष्यकी आयु इतनी लंबी होती भी नहीं कि वह प्रत्येक मुने तथ्यकी सत्यताकी जाँच प्रयोगोंद्वारा करता जाय। यदि लोग दूसरोंद्वारा किये गये प्रयोगोंको ही करनेमें लग जायँ तो नवीन प्रयोग करना सर्वथा असम्भव हो जायगा। आजके वैज्ञानिकोंने भी बड़े-बड़े दूरवीक्षण यन्त्रोंद्वारा चन्द्रमामें घाटी, दरारें तथा गह्वरों आदिका होना सिद्ध कर दिया है।

राम-रावण-युद्धमें पारमाणविक शस्त्रास्त्रोंका खुलकर प्रयोग हुआ और रामके पास तगड़े पारमाणविक आयुधोंके होनेके ही कारण रावणको हारना पड़ा। आजके परमाणु-अस्त्रोंपर

चालकका इतना बश नहीं कि वह इच्छानुसार जितना काम लेना चाहे उतना ही ले सके और जिसको मारना चाहे उसीको मार सके; किंतु उस समयके वैज्ञानिकोंने परमाणु-अस्त्रोंपर इतना अधिकार जमा लिया था कि उनसे जितना काम लेना चाहे उतना ही ले सके और जिसको मारना चाहे उसीको मार सके; दूसरेको कोई क्षति न पहुँच सके। यदि कोई इसी विषयका वर्णन करने बैठ जाय तो एक अच्छी-खासी पुस्तक तैयार हो जायगी। परंतु इस विषयपर अधिक चर्चा करना लेखके विषयसे अलग होगा। कभी विस्तृतरूपमें इस विषयकी भी चर्चा करूँगा।

वस्त्र इत्यादि बनानेमें हम इतने आगे पहुँच गये थे कि आजकलके अत्याधुनिक वस्त्र भी उनकी तुलनामें नहीं ठहर सकते। अभी कुल ढाई-तीन सौ वर्ष पहले ढाकेमें ऐसी मलमल बनती थी, जिसका एक थान साधारण बाँसुरीके अंदर समा जात-था और जिसको नौ-दस पर्त करके पहननेपर भी भीतरकी देह स्पष्ट झलकती थी।

महाभारत-कालमें विज्ञान इतनी उन्नतावस्थामें था और युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ऐसी वैज्ञानिक चमत्कार-पूर्ण सजावटकी गयी थी कि जब दुर्योधन निमन्त्रित होकर वहाँ गया तो थलमें जलका भ्रम हो जानेके कारण वह कपड़े सँभालकर चलने लगता था और जलमें थलका भ्रम होनेके कारण वह उसीमें गोते खाने लगता था। विज्ञानका यह चमत्कार आज कहीं भी प्रतिलक्षित नहीं होता।

उपरिवर्णित इन बातोंका विवरण संस्कृत माध्यममें पुराणों, स्मृतियों, काव्यग्रन्थों, नाटकों तथा अन्य ग्रन्थोंमें सबके लिये सुलभ है। वेद तो इतने विज्ञानयुक्त हैं कि एक पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है कि 'अबके हिंदू वेद क्या समझेंगे, जिनका वैज्ञानिक मस्तिष्क ही नहीं रह गया।'।

विश्वकी प्राचीन कही जानेवाली भाषाओंमेंसे लैटिन, ग्रीक आदिका अब नाम ही रह गया है। उनका अध्ययन भी केवल कुछेक पाश्चात्य देशोंमें ही होता है। परंतु संस्कृत ऐसी भाषा है, जिसका अध्ययन प्रायः संसारके प्रत्येक महान् देशमें चिरकालसे होता आ रहा है। जर्मनी, फ्रांस तथा इंग्लैंडमें (अब रूसमें भी) संस्कृतके ऐसे धुरंधर विद्वान् मिलते हैं, जिनकी विद्वत्ताका क्या कहना (संस्कृतको मृत भाषा कहनेवाले अंग्रेजीदाँ लोगोंके मुँहपर इससे बढ़कर चपत और क्या होगी?)।

विश्वविख्यात भारतीय वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, सर जगदीशचन्द्र बसु, डाक्टर मेघनाद साहा तथा

भारतरत्न सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन् आदि भी संस्कृतके महान् विद्वान् थे और हैं। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय विज्ञानके लिये संस्कृतकी शिक्षा आवश्यक बतलाते थे। डाक्टर मेघनाद साहा तो प्रारम्भमें अपने घरके लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृतमें ही कराते थे। उन्होंने विदेश जाते समय अपनी दो भतीजियोंको संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित तथा अन्य कई भाषाओंके ज्ञाता आचार्य कपिलदेव शर्माके पास संस्कृत पढ़नेको भेजा था। जब आचार्यने उनसे पूछा कि अबतक उन्हें कौन पढ़ाता रहा है, तब उन्होंने कहा 'चाचा'। इतने बड़े वैज्ञानिक भी जब अपनी बच्चियोंको स्वयं संस्कृतमें शिक्षा देते थे, तब हमें भी इस बातसे प्रेरणा लेनी चाहिये। सर रामन् भी संस्कृतके अनन्य प्रेमी हैं। आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय रसायन-शास्त्रके विश्व-विख्यात पण्डित होनेके साथ-साथ संस्कृतके भी धुरंधर विद्वान् थे, उनके द्वारा लिखा गया ग्रन्थ 'हिंदू रसायनशास्त्रका इतिहास' उनके संस्कृत-ज्ञानके कारण ही सम्भव हो सका। 'बंगाल केमिकल ऐंड फार्मास्युटिकल वर्क्स' नामक संस्था भी उन्हींके द्वारा आयुर्वेदके आधारभूत ज्ञानके सहारे संस्थापित की गयी। इस संस्थाद्वारा निर्मित उच्चकोटिके औषधों, तैलों तथा अन्य शृङ्गार-साधनोंके कारण प्रत्येक वर्ष देशका अनगिनत रुपया बाहर जानेसे बच जाता है। उनके संस्कृत-प्रेमका परिचय निम्नलिखित घटनासे मिलता है। एक बार संयोगवश आचार्य राय, डा० राजेन्द्र प्रसाद (वर्तमान राष्ट्रपति, उस समय स्वतन्त्रता-संग्रामके अद्वितीय सेनानी) तथा आचार्य कपिलदेव शर्मा साथ-ही-साथ पटनासे पहलेजाघाट जा रहे थे। रास्तेमें शर्मा महोदयने आचार्य रायको मक्खन खानेको दिया। राय महोदय मक्खन खाने लगे और मक्खनसे सम्बद्ध कालिदासके रघुवंश महाकाव्यके—

हैयंगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ।

नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥

आदि श्लोकोंको गाने लगे और तबतक चुप न हुए जबतक वह सर्ग समाप्त न हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने राजेन्द्रबाबूसे कहा—'राजेन्द्र, तुमने अपनी छात्रावस्थामें संस्कृत पढ़ी थी?' प्रत्युत्तरमें राजेन्द्र बाबू बोले—'एम० ए० परीक्षाके समय ४०० श्लोकोंको कण्ठस्थ किया था और जेलमें थोड़ा संस्कृत पढ़नेका अवसर मिला। छात्रावस्थामें विशेष संस्कृतका ज्ञान नहीं हासिल कर सका था।' यह सुनते ही राय महोदयने बँगलामें कहा—'तोमरा एके बारे degenerated, संस्कृत ना जानिया कि केह मानुष होइते पारे।' अर्थात् तुम-

लोग बिलकुल गिर गये हो, संस्कृत बिना जाने क्या कोई मनुष्य कहला सकता है? इससे उनके संस्कृत-प्रेम तथा ज्ञान और संस्कृत भाषाकी उपयोगिताका पता चलता है।

इसी प्रकार एक बार आचार्य कपिलदेव शर्मा कुछ छात्र-छात्राओंके साथ जगदीशचन्द्र बसुके पास गये और उनसे पूछा, 'आप यह बतायें कि वनस्पतियोंमें प्राण है—इसके विषयमें अन्वेषण करनेकी इच्छा आपको कैसे हुई?' उत्तरमें बसु महोदयने ही एक प्रश्न पूछ दिया—'तुम एक ऐसा संस्कृत शब्द बताओ, जिससे बहुत प्रकारके पौधोंका बोध हो।' आचार्य शर्माको तत्काल 'शस्यश्यामलं मातरम्' याद आ गया और उन्होंने कहा 'शस्य'।

बसु महोदयने पूछा—'शस्य' किस धातुसे बना है?

आचार्य शर्मा—'शस्' धातुसे।

बसु म०—'शस्' का अर्थ क्या होता है?

आ० शर्मा—'शस्' इत्या करना।

बसु म०—तब 'शस्य' का अर्थ क्या हुआ?

आ० शर्मा—'इत्या किये जाने योग्य अथवा मार डाले जाने योग्य।' इसपर सर बसुने कहा, बताओ, यदि शस्योंमें प्राण नहीं होते तो उन्हें 'इत्या किये जाने योग्य' क्यों कहा जाता?

इसके अनन्तर उन्होंने कहा कि 'संस्कृतका प्रत्येक शब्द वैज्ञानिकोंको अनुसंधानके लिये प्रेरित करता है। प्राचीन ऋषि-महर्षियोंने विज्ञानमें जितनी उन्नति की थी, उसका अणुमात्र भी वर्तमान संसार नहीं कर सकता।'।

उसी यात्रामें जब आचार्य बसु यन्त्रद्वारा घासोंका हँसना, रोना और खाना दिखा रहे थे, तब 'बसु-विज्ञान-मन्दिर' के उद्यानमें एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर दीख पड़ा, जिसमें मूर्ति नहीं थी किंतु शङ्ख रखा हुआ था। उसे देखकर आचार्य शर्माने पूछा कि 'आपने मन्दिरमें शङ्ख क्यों रखा है?' बसु महोदय बोले—'तुम्हीं एक बात बताओ। तुम्हारे यहाँ शङ्खके विषयमें कोई कहावत प्रचलित है?' आचार्य शर्माने तुरंत कहा—'हाँ, 'शंख बाजै, राक्षस भागै'।' तुरंत प्रश्न हुआ—'राक्षस किस धातुसे बना है?'

उत्तर—'रक्ष' से।

प्रश्न—तब 'राक्षस' का अर्थ क्या हुआ?

उत्तर—राक्षसका अर्थ है, जिससे रक्षा करनी पड़े।

प्रश्न—किस वस्तुकी रक्षा अत्यन्त आवश्यक है?

उत्तर—सभी उत्तम वस्तुओंकी।

प्रश्न—सबसे उत्तम वस्तु कौन-सी है?

उत्तर—प्राण।

इसपर सर जगदीशचन्द्र बसुने हँसते हुए कहा—‘देखो, प्राणके सबसे बड़े शत्रु रोगके कीटाणु हैं, अतएव प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये इन राक्षसोंका मारा जाना आवश्यक है। कुछ रोगाणु ऐसे होते हैं, जो अन्य किसी उपायसे नहीं मारे जा सकते, वे केवल शङ्ख-ध्वनिसे मरते हैं। इसी कारण प्रत्येक मनुष्यको, चाहे वह हिंदू हो या अहिंदू, प्रातः-सायं अपने घरमें शङ्ख-ध्वनि अवश्य ही करनी चाहिये।’ बसु महोदयकी इस व्याख्यासे शर्माजी चमत्कृत हो गये और मुक्त-कण्ठसे उनकी तथा संस्कृत भाषाकी प्रशंसा करने लगे और आजतक करते हैं।

संस्कृत भाषाका प्रत्येक शब्द अमूल्य है। यदि कोई संस्कृतका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् शब्दोंके अर्थपर विचार करे तो असंख्य वैज्ञानिक महत्वकी बातोंका पता लग सकता है। अब हम कुछ शब्दोंके अर्थपर विचार करते हुए इस कथनकी सत्यता प्रमाणित करेंगे। संस्कृतमें मङ्गलग्रहको भौम तथा कुज कहते हैं। ‘भौम’ का अर्थ होता है ‘भू अर्थात् पृथ्वीका पुत्र’। इसी प्रकार कुज का अर्थ है ‘कु अर्थात् पृथ्वीसे जन्मा हुआ।’ आजकी वैज्ञानिक खोजोंके बाद इस बातकी सत्यता सिद्ध हो गयी है। वैज्ञानिकोंने यह पता लगाया है कि पृथ्वीकी तरह मङ्गलग्रहपर भी वायुमण्डल तथा पेड़-पौधे इत्यादि हैं। यदि हम मङ्गलग्रहके संस्कृत नामके अर्थपर विचार करें तो इस आधुनिक कथनमें कोई नवीनता नहीं दृष्टिगोचर होती। पुत्रका स्वभाव पिता-माताके स्वभावसे बहुत अंशमें समान होता है, अतएव यदि पृथ्वी-पुत्र मङ्गल पृथ्वीके गुणोंसे समानता रखता है तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। इसके अतिरिक्त अन्वेषणकर्त्ताओंने पता लगाया है कि मङ्गलग्रह रक्तवर्ण है। संस्कृतमें इसका नाम ‘लोहिताङ्ग’ भी है,

जिसका अर्थ है ‘रक्त अङ्गवाला’। यदि प्राचीन ऋषि-महर्षियोंको मङ्गलग्रहके रंगका ज्ञान न होता तो ऐसा नाम क्यों पड़ता? हिंदू-संस्कृतिके अनुसार मङ्गलग्रहका प्रकोप शान्त करनेके लिये मूँगा धारण किया जाता है। मूँगाका लाल रंग भी मङ्गलग्रहके लोहितवर्णकी ओर संकेत करता है।

हम दूसरा उदाहरण सूर्यके नामका लेंगे। सूर्यको संस्कृतमें सप्ताश्व तथा सप्तार्चि कहा गया है। सप्ताश्व तथा सप्तार्चिका अर्थ है सात घोड़ों वाला या सात किरणोंवाला। आजके वैज्ञानिक अनुसंधानोंके पश्चात् सूर्यके प्रकाशमें सात प्रकारकी प्रकाश-रश्मियोंका होना प्रयोगद्वारा सिद्ध किया जा चुका है। इससे हम देखते हैं कि संस्कृत नाम कितने वैज्ञानिक और गूढार्थ-पूर्ण होते हैं।

तीसरा उदाहरण चन्द्रमाके नामका है। चन्द्रमाको संस्कृतमें ओषधिराज कहते हैं। ओषधिराजसे तात्पर्य ओषधियोंपर नियन्त्रण रखनेवालेसे है। हम जानते हैं कि कुछ ओषधियाँ ऐसी होती हैं, जिनका गुण चन्द्रमाकी कलाके घट-बढ़के साथ घटता-बढ़ता रहता है (उदाहरणार्थ, चित्रकूटकी दमेकी जड़ी)। इसी प्रकार कुछ रोगों (जैसे फाइलेरिया) का प्रकोप भी चन्द्र-कलाके साथ घटता-बढ़ता रहता है।

इन सब बातोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन कालके ऋषि-महर्षियोंने प्रत्येक वस्तुके ऊपर सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुसंधान भी कर डाला था। बिना प्रयोग किये हुए वस्तुओंका प्रयोगसिद्ध नामकरण ही असम्भव होता। आज भी हमारे इन मननशील पूर्वजोंकी थाती संस्कृत भाषाके रूपमें हमारे लिये सुरक्षित रखी है। अब हमारा यह कर्तव्य है कि हम संस्कृतका अध्ययन करें और अपने ज्ञान-विज्ञानके भंडारमें असीम वृद्धि कर लें।

मन-इन्द्रियाँ मेरे आज्ञाकारी सेवक हो गये हैं

मायाकी कैसी विचित्र महिमा है कि सच्चिदानन्दधन अद्वितीय सनातन भगवान्का अभिन्न अंश होनेपर भी मैं अपनेको बँधा देखता था और सदा-सर्वदा इन्द्रियोंकी तथा मनकी गुलामी करनेमें ही लगा रहता था। अब भगवान्की कृपासे जब वह मायाका पर्दा हट गया, तब मैं प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ कि मन-इन्द्रियोंका मुझपर जरा भी अधिकार नहीं है, न संसारकी किसी विषय सत्ताका ही मुझपर प्रभाव है। अब इन मन-इन्द्रियोंने मेरी पूर्ण अधीनताको सर्वथा स्वीकार कर लिया है और इन्हें मैं अपने इच्छानुसार भगवान्की सेवामें ही लगाये रखता हूँ। ये अब मुझपर जरा भी अपना आधिपत्य नहीं जमाना चाहते। ये जान गये हैं कि अब यह अपने भगवान्के सनातन अभिन्न अंशस्वरूपमें स्थित हो चुका है, हम जरा भी चीँ-चपड़ करेंगे तो हमारा विनाश ही हो जायगा। अतः अब ये मन-इन्द्रियाँ सब मेरे आज्ञाकारी सेवक हो गये हैं।

अपराधीसे महात्मा

प्रेमपूर्ण-हृदय बिशप माइरिल विनवेनू

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

फ्रांसके अमर कलाकार विक्टर ह्यूगोका एक उपन्यास है—‘ला मिजरेबल्स !’

दुखियोंका, अभागोंका, पीड़ितोंका, तिरस्कृतोंका, अपराधियोंका उसमें चित्रण है अत्यन्त हृदयस्पर्शी ।

जो पढ़ता है — रोये बिना नहीं रहता ।

जो पढ़ता है—ऊँची भावनाओंमें डूबे बिना नहीं रहता ॥

‘ला मिजरेबल्स’का प्रकाशस्तम्भ है—बिशप विनवेनू ।

प्रेम और करुणा, दया और उदारतासे ओतप्रोत—बिशप विनवेनू ॥

पुजारीको, धर्मोपदेशकको कितना उदार, कितना प्रेमिल और कितना कोमल होना चाहिये, इसका एक प्रेरक उदाहरण है—विनवेनू !

हमारे जीवनमें कितनी सादगी, कितनी करुणा, कितनी उदारता और कितनी कष्ट-सहिष्णुता अपेक्षित है—इसका एक उज्ज्वल आदर्श है—श्रीमाइरिल विनवेनू !

संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन पै कहइ न जाना ॥

निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर-दुख द्रवइ संत सुपुनीता ॥

काश, हम इस महात्मासे कुछ सीख सकें !

पादरी विनवेनू

बात है १८१५ की । एम० चार्ल्स फ्राकोइस विनवेनू माइरिल द—नगरका बिशप है । पचहत्तरवर्षीय यह प्रधान धर्मयाजक १८०६ से इस गद्दीको सम्हाले हुए है ।

माइरिलका पिता आइक्सकी पार्लमेंटका सदस्य था । वह चाहता था कि आगे चलकर उसका बेटा उसका उत्तराधिकारी बने । इसी उद्देश्यसे उसने १८-१९ सालकी उम्रमें ही उसकी शादी कर दी थी । सुन्दर डील-डौलवाले सौम्य, आकर्षक चार्ल्सके जीवनका आरम्भिक भाग सांसारिक विषयभोगोंमें व्यतीत हुआ ।

तभी आयी ९३ की फ्रांसकी राज्यक्रान्ति । घटनाओंपर घटनाएँ घटने लगीं । संसद-सदस्योंको, उनके परिवारोंको खोज-खोजकर मौतके घाट उतारा जाने लगा । कुछ लोग

जान बचाकर इधर-उधर भागे । चार्ल्स माइरिल भी इटली भाग गया । उसकी पत्नी फेफड़ोंकी लंबी बीमारीसे पीड़ित होकर चल बसी । संतान उसके कोई थी नहीं । पुराने फ्रांसीसी समाजके विनाश, अपने वंशके पतन और क्रान्तिकी भयंकर लपटोंके दुःखद दृश्योंकी अनुभूतिसे भावुक विधुर माइरिल कल्पनालोकमें वह उठा । एकान्तमें बैठकर वह जगत्की निस्सारतापर विचार करने लगा । लोगोंने देखा कि इटलीसे माइरिल लौटा तो वह बिल्कुल बदल चुका है । अब वह है एक पादरी !

१८०४ में माइरिल त्रिगनोल्स जिलेका एक क्यूरे (छोटा पादरी) था । राब्याभिषेकके अवसरपर वह अपने यहाँके एक छोटेसे मामलेको लेकर पेरिस गया और वहाँ वह कार्डिनल फ्रेस्कके दर्शनके लिये चला गया । एक दिन सम्राट् नेपोलियन जब अपने चाचासे मिलने जा रहे थे, रास्तेमें माइरिलको अपनी ओर विचित्र भावसे ताकते देखकर पूछ बैठे—‘कौन है यह भला आदमी, जो मेरी ओर यों ताक रहा है ?’

‘श्रीमान्’ माइरिल बोला—‘देख रहे हैं एक भले आदमीको’ और मैं देख रहा हूँ एक बड़े आदमीको ! इससे हम दोनोंका कल्याण हो सकता है !’

सम्राट्ने कार्डिनलसे उसी दिन पूछ लिया इस क्यूरेका नाम और थोड़े ही दिनों बाद माइरिलको घोर आश्चर्य हुआ यह आदेश-पत्र पाकर कि वह द—नगरका बिशप नियुक्त कर दिया गया है !

माइरिल जब द—नगरमें आया तो उसके साथ थी मदाम बैपटिस्टाइन, उससे दस साल छोटी उसकी बहन । एक थी दसरी, श्रीमती मैग्लेयर । बैपटिस्टाइन थी लंबी, पीली, दुबली, पतली, मधुर महिला । शरीरका सौन्दर्य तो नहीं था उसमें, गुणोंका सौन्दर्य अवश्य था । दया, उदारता, कोमलता और क्षमासे ओतप्रोत । मैग्लेयर थी ठिगनी, गोरी, मोटी, हँसोड़ । हरदम हाँफती रहती । पहले कामसे, फिर दमासे ।

द—नगरमें बड़े ठाट-बाटसे माइरिलका स्वागत किया गया। फील्ड मार्शलके बादका दर्जा मिला उसे।

माइरिलने बिशपके महलके बगलमें लगा देखा छोटा-सा अस्पताल—तंग, एकमंजिला। पासमें था छोटा-सा बगीचा।

तीन दिन बाद बिशपने अस्पतालका मुआइना किया। लौटते समय वहाँके डाइरेक्टरको लिवा लाया अपने साथ। पूछा—‘कितने रोगी हैं आपके यहाँ, श्रीमान्?’

‘छब्बीस हैं प्रभू! पर, जगह बड़ी तंग है। तमाम चारपाइयाँ एक दूसरेसे सटाकर रखी गयी हैं।’

‘हाँ, सो तो मैंने भी देखा है।’

‘बगीचेमें भी रोगियोंके बैठनेकी जगह कम है।’

‘हाँ, ऐसा ही तो मैं भी सोच रहा हूँ।’

कभी-कभी महामारी आ जाती है। इस साल टाइफस ज्वर आया, दो साल पहले फौजी बुखार आया। ऐसे मौकों पर एक-एक सौ रोगी आ जाते हैं। तब हमारी समझमें नहीं आता कि हम क्या करें।

‘हाँ, यही बात तो मेरे भी दिमागमें आ रही है।’

‘हम कर ही क्या सकते हैं, प्रभू?’ डाइरेक्टर बोला—‘भगवान्की जैसी मर्जी।’

बिशप कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—‘श्रीमान्! जरा अंदाज तो लगाइये कि हमारे इस हालमें कितनी चारपाइयाँ आ सकेंगी?’

डाइरेक्टर भौंचक्का-सा होकर बोला—‘प्रभूके इस भोजनागारमें?’

बिशपने मन-ही-मन अंदाज लगाया कि हालमें बीस चारपाइयाँ आ जायँगी। फिर जरा जोरसे कहा, ‘देखिये, श्रीमान्! यहाँ निश्चय ही कुछ भूल हुई है। अस्पतालके छोटे-छोटे पाँच-छः कमरोंमें छब्बीस रोगी हैं जब कि यहाँ साठ आदमियोंकी जगह है। पर, रहते हैं कुल तीन आदमी। यह गलती है। आइये, हम इस गलतीको सुधार डालें। आप यहाँ आ जाइये, मैं वहाँ चला जाता हूँ।’

दूसरे दिन अस्पताल बिशपके महलमें चला आया, बिशप अस्पतालमें !

X

X

X

माइरिलके पास कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी। क्रान्तिकी विभीषिकामें उसका परिवार स्वाहा हो चुका था। वहनको ५०० फ्रांककी आय थी, जिससे उसका काम चल जाता था। माइरिलको बिशप होनेके नाते पंद्रह हजार फ्रांकका भत्ता सरकारसे मिलता था। जिस दिन बिशप अस्पतालमें रहनेको चला आया, उसी दिन उसने अपने खर्चका जो बजट बनाया, उसमें अपने निजी खर्चके लिये केवल एक हजार फ्रांक रखे, बाकी चौदह हजार फ्रांक स्कूल, कुष्ठ-रोगियों, प्रसूताओं, कैदियों, श्रृणुग्रस्तों, गरीब अध्यापकों, छात्र-छात्राओं और अन्य गरीबोंकी सेवाके लिये निकाल दिये।

डेढ़ हजार फ्रांककी सालाना आमदनीमें दोनों भाई-बहन मजेमें अपनी गुजर कर लेने लगे। गाड़ी-खर्चके लिये सरकारसे ३००० फ्रांकका भत्ता और मंजूर हुआ तो बिशपने उसे भी अस्पतालके रोगियों, प्रसूताओं, विपद्ग्रस्तों और अनाथोंकी सेवामें अर्पित कर दिया।

व्यर्थकी धूम-धाममें पैसे खर्च करनेके बजाय गरीबोंमें पैसे बाँटना बिशपको पसंद था। थोड़े ही दिनोंके भीतर कुछ लोग दान देनेके लिये आने लगे, कुछ लोग दान लेनेके लिये। अमीरोंसे लेकर वह गरीबोंको बाँटने लगा। सालभरके भीतर ही बिशप सभी उदार व्यक्तियोंका खजांची बन बैठा और सभी विपद्ग्रस्तोंका सहारा। मोटी-मोटी रकमे उसके हाथमें आने लगीं और वितरित होने लगीं। पर उसकी सादगीमें, उसकी रहन-सहनमें रत्तीभरका भी फर्क नहीं पड़ा।

ऊँचे दर्जेके लोगोंमें जितनी मानवता नहीं होती, उससे कहीं ज्यादा है नीचे दर्जेके लोगोंमें गरीबी! इसलिये पैसे आते देर न लगती थी। वह सारा-का-सारा गरम तवेपर पानी-जैसे छल्ल हो जाता था। बिशप गरीबोंका प्यारा बन बैठा। प्यारसे वे उसे पुकारने लगे ‘मानसिगन्यूर विनवेन्।’

बिशपका सीमाक्षेत्र बहुत बड़ा था। ३२ ‘क्यूर’, ४१ ‘विकार’ और २८५ छोटे ‘क्यूर’ उसके अधीन थे। लंबा-चौड़ा दायरा। समतल भूमि तो कम, पहाड़ी प्रदेश ज्यादा। इस सारे प्रदेशका उसे दौरा करना होता था। आसपासके प्रदेशमें वह पैदल जाता, मैदानमें गाड़ीसे जाता और पहाड़ों-पर खच्चरसे।

एक बार बहुत खाली होनेसे बिशप सेनेज नामक

स्थानपर जा पहुँचा मदहेपर सवार होकर । नगर-पिता आदि जब उसका स्वागत करने पहुँचे, तब उनकी उपेक्षाभरी दृष्टि देखकर बिशप बोला, 'आपलोग शायद सोचते होंगे कि यह छोटा-सा पादरी प्रभु ईसूकी सवारीका उपयोग करता है, पर मैंने ऐसा कतई नहीं किया । ऐसैकी कमी ही इसका कारण है ।'

बिशप लंबा-चौड़ा उपदेश बहुत कम देता । जब भी कोई बात कहता, तब अत्यन्त नम्रतापूर्वक । पास-पड़ोसके उत्साहवर्द्धक उदाहरण देकर वह लोगोंको प्रेरित करता सक्तमोंके लिये । फलों गाँववाले, गरीबों, अनाथों और विधवाओंके साथ कितना अच्छा व्यवहार कर रहे हैं ! फलों गाँवमें परिवारके बड़े-बूढ़ेके बीमार पड़नेकी खबर पाकर लोग उसकी फसल काट करके उसके घर पहुँचा देते हैं । फलों गाँववाले अपना सारा इंतजाम खुद कर लेते हैं । उन्हें न पुलिस चाहिये न हाकिम । अपने झगड़ोंका फैसला वे आप कर लेते हैं । फलों-फलों गाँवमें गरीबी है, अध्यापक रखना कठिन है । वे लोग सामूहिक रूपसे अध्यापक रखते हैं । उसका वेतन सब गाँववाले लोग मिलकर चुकाते हैं । यह अध्यापक धूम-धूमकर पढ़ाता है । किसी गाँवमें आठ दिन, किसीमें दस दिन ।

ऐसी प्रेरक बातोंका जनतापर अच्छा प्रभाव न पड़े, यह हो ही कैसे सकता है ।

बिशपकी बातचीत विनयपूर्ण तो रहती ही थी, विनोदपूर्ण भी रहती थी । बालकोंकी तरह उसकी निष्कपट हँसी सबको खिलखिला देती । मैग्लोयर बिशपको 'महात्मा' कहकर पुकारनेमें प्रसन्नताका बोध करती । एक दिन ऊँचेपर रखी एक पुस्तकको हाथ बढ़ाकर भी बिशप न पा सका, तब बोला 'श्रीमती मैग्लोयर, जरा एक कुर्सी तो उठा लाना । यह महात्मा उतने ऊपरतक पहुँचनेमें असमर्थ पाता है अपनेको !'

बिशपके दूरके रिश्तेकी एक काउंटेस जब आती, तब अपने तीनों बेटोंके लिये शीघ्र मरनेवाले कई बूढ़ोंके उत्तराधिकारकी 'भारी आशा' लेकर आती । बिशप चुपचाप उसकी बातें सुनता रहता । एक दिन वह बोल पड़ी— 'हे भगवान् ! तुम क्या सोच रहे हो, मेरे भाई ?'

मैं ? मैं सोच रहा हूँ सेंट अगस्टाइनकी बात—अपनी सारी आशाएँ छोड़ दो उस ईश्वरपर, जिसके लिये उत्तराधिकारका कोई सवाल ही नहीं उठता ।'

एक व्यक्तिका मृत्यु समाचार मिला बिशपको । उस पत्रमें मृत व्यक्तिके गुण और उपाधियोंका वर्णन तो था ही, उसके आत्मीयोंकी उपाधियाँ भी भरी पड़ी थीं । बिशपने कहा, 'कितनी चौड़ी पीठ है मौतकी ! कितना भारी आश्चर्यजनक बोझ लादा जा रहा है मृतकपर, जिसे वह प्रसन्नतापूर्वक ढोयेगा । संगे-भञ्जारपर भी अहंकारका यह तमाशा !'

एक धनी व्यापारीने कपड़ेमें बीस लाखकी कमाई की । वह दानमें एक कौड़ी नहीं खर्चता था । एक दिन एक पादरीने अपने प्रवचनमें कहा कि अमीरोंको नरककी ज्वालासे बचने और स्वर्ग जानेके लिये गरीबोंको दान देना चाहिये । तबसे यह देखा गया कि वह अमीर हर रविवारको गिरजाके द्वारपर बैठी भिखारिन बुढ़ियोंको एक इकट्ठी दान करने लगा । उसमें छः भिखारिमें हिस्सा बँटाती । एक दिन बिशपने यह तमाशा देख लिया । मुसकराकर वह बोला वहनसे, 'देखो, ये महाशय एक आनेका स्वर्ग खरीद रहे हैं ।'

एक दिन बिशपने अपने प्रवचनमें कहा—'अपने देशमें तीन लाख छियालीस हजार गरीबोंके घरोंमें सिर्फ एक दरवाजा है, फिर भी उन्हें 'कर' देना पड़ता है ! जरा सोचिये तो कि इन पिंजड़ोंमें रहनेवाले लोगोंमें कितनी बुरी तरह ज्वर और संनिपात फैलता है ! परमेश्वर प्रकाश देता है, कानून उसके पैसे खड़े करता है ! आल्प्स पर्वतपर रहनेवाले किसान गाड़ियोंके अभावमें पीठपर लादकर खाद खेतोंमें पहुँचाते हैं । मोमवत्तियोंके अभावमें लकड़ी और रस्सी जलाकर उजाला करते हैं । डाफिनमें लोग एक बार ही कंडोंपर सेक कर छः मासके लिये रोटियाँ बना लेते हैं । जाड़ोंमें उन्हें कुल्हाड़ीसे काट-काटकर पानीमें चौबीस घंटे डुबोते हैं, तब कहीं वे खाने लायक होती हैं ! मेरे भाइयो ! इन सब गरीबोंके प्रति तुम्हें उदार होना चाहिये । जरा देखो तो कि कितनी गरीबी ऊँचा हुई है तुम्हारे चारों ओर !'

बिशपने अपने क्षेत्रकी तमाम देहाती बोलियाँ सीख ली थीं । सब लोगोंसे वह उनकी बाँलोंमें बात करता, जिससे सहज ही वह उनके हृदयतक जा पहुँचता । शोपड़ीमें हो चाहे पहाड़पर, बिशपके व्यवहारमें कोई अन्तर न आता । बड़ी-से-बड़ी बात वह सीधी-सादी भाषामें कह डालता । साथ ही अमीर हो या गरीब, सबके साथ उसका व्यवहार एक-सा रहता ।

बिशप उतावलीमें न तो किसीकी टीका करता, न भलीभाँति विचार किये बिना किसी बातपर कोई निर्णय देता। कहता हमें देखना चाहिये कि आखिर किन परिस्थितियोंमें कोई अपराध बन पड़ा है।'

कुछ लोगोंकी टेढ़ी भौंहोंकी रस्तीभर भी परवाह किये बिना बिशप अपनेको पुराना पापी बताते हुए अकसर ऐसी बातें कहा करता था—

‘मनुष्यको एक शरीर मिला हुआ है, जो उसके लिये भार भी है, आकर्षण भी। वह उसे घसीटता भी है और उसके आकर्षणमें भी फँस जाता है।’

‘मनुष्योंको शरीरपर पहरेदारी करनी चाहिये और उसे मर्यादाके भीतर रखना चाहिये। उसे दबाना चाहिये और केवल तभी उसकी बात माननी चाहिये, जब दूसरा कोई चारा न रह जाय। उस समय भी उसकी बात मानना गलत हो सकता है। वह झुकना तो है, पर वह घुटनोंपर झुकना माना जा सकता है, जो आगे चलकर प्रार्थनाके लिये झुकनेका स्वरूप धारण कर सकता है।’

‘साधु बनना अपवाद है, परंतु ईमानदार होना एक न्यायसंगत बात है। भले ही तुम गलती करो, भले ही तुम पाप करो; पर रहो ईमानदार, रहो सच्चे।’

‘मानवका नियम है—न्यूनतम पाप करना। कोई भी पाप न करना—यह देवदूतका स्वप्न है। लौकिक जगत्वालोंसे पाप होना स्वाभाविक है। मनुष्यसे गलती होती ही है। पाप मानो आकर्षणका केन्द्रबिन्दु है।’

बिशप जब बहुत-से लोगोंको किसीके प्रति घृणा और क्रोध व्यक्त करते देखता, चिल्लाते देखता तो मुसकराकर कहता, ‘ओह, ऐसा लगता है मानो यही सबसे बड़ा पाप है जिसके कि सभी लोग अपराधी हैं। भयाकुल दान अपने आपको भावरणमें छिपानेको कैसा आकुल है!’

समाजके भारसे बुरी तरह दबी हुई स्त्रियोंके प्रति, गरीबोंके प्रति बिशप उदार था। कहता था कि ‘स्त्रियों, बच्चों, नौकरों, कमजोरों, गरीबों और अज्ञानियोंके दोष उनके प्रतिष्ठों, पिताओं, स्वामियों, बलवानों, अमीरों और समझदारोंके दोष हैं।’

कभी-कभी वह कहता—‘अज्ञानियोंको तुम जितनी शिक्षा दे

सकते हो, दो। वह समाज निन्दाके योग्य है, जो सबकी शिक्षाकी व्यवस्था नहीं करता। जिस अन्धकारको वह स्वयं फैलाने देता है, उसका दोष उसीपर है। यदि आत्माको अन्धकारमें छोड़ दिया जाता है तो पाप होंगे ही। उस पापके लिये वह दोषी नहीं, जो पाप करता है, बल्कि वह है जिसके कारण अज्ञानान्धकार फैलता है।’

यों हम देखते हैं किसी भी बातपर विचार करनेका बिशपका दंग निराला और विचित्र ही था। शायद बाइबिलसे उसे इसकी प्राप्ति हुई हो।

एक दिन बैठकमें किसीने बिशपको बताया कि एक दुखी आदमीने एक स्त्री और एक बच्चेके प्यारमें आकर पैसा न रहनेपर जाली सिक्के तैयार किये हैं। उन दिनों ऐसे जुर्ममें फाँसीकी सजा दी जाती थी। जाली सिक्के चलानेके जुर्ममें स्त्री गिरफ्तार कर ली गयी, पर उस पुरुषके खिलाफ कोई सबूत नहीं था। वही यदि चाहती तो पुरुषका कसूर बताकर उसे फँसा सकती थी। पर वह पुरुषका अपराध स्वीकार ही नहीं कर रही थी। उसपर बहुत दबाव डाला गया, पर वह टस-से-मस नहीं हुई। तब सरकारी वकीलको एक तरकीब सूझी। उसने उस स्त्रीसे कहा कि ‘तेरा प्रेमी तो तेरे प्रति वफादार ही नहीं है, वह दूसरी स्त्रीको प्यार करता है। यह देख उसका लिखा पत्र!’ कई पत्रोंको चालाकीसे काटकर उसने ऐसा एक अधूरा पत्र तैयार किया, जिससे उस स्त्रीको इस बातका भरोसा हो गया कि पुरुषने उसे धोखा दिया है। सौतियाडाहसे पीड़ित होकर उस अभागिनी स्त्रीने पुरुषका सारा अपराध प्रकट कर दिया। अब आइक्सकी अदालतमें उस आदमीपर मुकदमा चलेगा। श्रोतालोग वकीलकी चातुरीकी प्रशंसा करने लगे, जिसने सौतियाडाहका बीज बोकर क्रोधके माध्यमसे सच्ची बात उगलवा ली।

प्रतिशोधके द्वारा न्याय प्रकट करानेकी कैसी बढ़िया तरकीब। बिशप मौन होकर यह कथन कहानी सुनता रहा। बादमें उसने पूछा—‘इन दोनोंपर कहाँ मुकदमा चलेगा?’

‘उच्च न्यायालयमें।’

बोला ‘और उस सरकारी वकीलपर कहाँ मुकदमा चलेगा?’

द—नगरमें हत्याके जुर्ममें एक आदमीको फाँसीकी सजा हुई। फाँसीके दिन जेलका पादरी बीमार पड़ गया। दूसरे

क्यूरेको बुलाया गया तो उसने कह दिया 'मुझे उस विदूषकसे क्या लेना-देना ? दूसरे, मैं बीमार भी हूँ। यह मेरा काम नहीं।'।

बिशपको पता लगा। वह बोला—'क्यूरेका कहना ठीक है वह उनका नहीं, मेरा काम है।'।

वह उठकर जेलकी ओर चल दिया। अपराधीकी कोठरीमें जाकर उसने उसका नाम लेकर उसे पुकारा और हाथ पकड़कर प्रेमपूर्ण शब्दोंमें उससे बातें करने लगा। उसने उसे धीधे-सादे शब्दोंमें सत्यके दर्शन कराये। भोजन, विश्राम—सब छोड़कर दिनभर वह उसके साथ रहा और उसके कल्याणके लिये प्रभुसे प्रार्थना करता रहा। विशपके उत्साहवर्द्धक शब्दोंसे उसे बड़ी सान्त्वना मिली।

दूसरे दिन विशपने फाँसीके तख्तेतक उसका साथ दिया। कल जो अपराधी हतप्रभ और उद्भ्रान्त-जैसा लगता था, आज बहुत स्वस्थ और उत्साहपूर्ण दिख रहा था। उसकी आत्मामें संतोष छा गया था और वह स्वर्ग पानेकी आशा कर रहा था।

अपराधीकी गर्दनपर कुल्हाड़ीका वार होनेसे पहले विशपने उसे हृदयसे चिपटाकर कहा, 'मनुष्य जिसे मारता है, प्रभु उसे जिलाता है। भाई-बन्धु जिसे छोड़ देते हैं, प्रभु उसे मिल जाते हैं। परम पिता तुम्हें अवश्य मिलेगा।'।

गला काटनेवाली मशीन—'गिलोटिन' देखकर विशप विचलित हो उठा।

हम जबतक किसीको प्राणदण्ड देते न देखें, तबतक हम भले ही प्राणदण्डके बारेमें कुछ भी सोचते रहें; पर जब हम अपनी आँखों गिलोटिन क्रूर दृश्य देखेंगे तब उससे हमें भयंकर रोमाञ्च हुए बिना रह नहीं सकता। फिर हम उसके पक्ष या विपक्षमें कुछ-न-कुछ मत प्रकट किये बिना न रहेंगे। गिलोटिन न तो स्वयं तटस्थ है न वह आपको तटस्थ रहने दे सकती है। सामाजिक समस्याओंका एक प्रश्न है—प्राणदण्ड। वह न तो केवल ढाँचा है न मशीन लकड़ी; न लोहा, न रस्सीमात्र। वह एक ऐसा दैत्य है, जिसकी हम कल्पना नहीं कर पाते। कोई कह सकता है कि इस ढाँचेमें आँखें हैं, इस मशीनको बुद्धि है, इस लकड़ी, लोहे, रस्सीमें इच्छा-शक्ति है। भयंकरतासे ओतप्रोत यह फाँसी जल्लादका साधन बनती है, यह मानवको खो जाती है। मांसका यह भक्षण

करती है, रक्तका पान। यह वह दानव है, जिसका निर्माण किया है जजने और कारीगरने। जीवनको खा डालनेवाली मृत्युकी यह विभीषिका अत्यन्त भयंकर है।

बिशपपर कई दिनतक इस भयंकर दृश्यका गहरा प्रभाव बना रहा। एक दिन वह बोला अपनी बहनसे—'मुझे नहीं पता था कि यह इतना भयंकर होगा। ईश्वरीय नियमोंमें इतना डूब जाना गलत है कि मानवनिर्मित कानूनोंपर हम ध्यान ही न दें। मृत्यु केवल ईश्वरके हाथकी चीज है। मनुष्यको क्या अधिकार है उस अज्ञात वस्तुको छूनेका ?'

रोगी अथवा मौतकी घड़ियाँ गिननेवाले व्यक्तिके पास जानेमें विशपको रत्तीभर भी संकोच नहीं होता था। अनाथों, विधवाओंके पास तो सेवाके लिये वह स्वयं जा पहुँचता था। दुखियोंके आँसू पोंछनेमें, उन्हें सान्त्वना पहुँचानेमें वह कुशल था। उसकी बातोंसे लोगोंको बड़ा ढाढ़स बँधता था।

जैसा था माइरिलका सार्वजनिक जीवन, वैसा ही था उसका व्यक्तिगत जीवन। उसका स्वयं आमन्त्रित दारिद्र्य प्रसन्नतासे ओतप्रोत था।

सभी वृद्ध पुरुषोंकी भौति माइरिल बहुत कम सोता था और उसकी वह अल्प निद्रा भी गाढ़ी और सुखदायिनी होती थी। सुबह वह एक घंटे ध्यान करता और तब वह धर्मोपदेश करता। दूधमें भिगोकर कलेवा करता और उसके बाद अपने दैनिक कार्योंमें संलग्न हो जाता।

बिशपको दफ्तरका काम भी काफी रहता था। खूब व्यस्त रहता वह। हजारों काम करने पड़ते उसे। इतना सब करनेके बाद वह जरूरतमंदों, बीमारों और दुखियोंकी सेवामें लगता। तब जो समय बचता, उसे वह शारीरिक श्रममें लगाता। या तो वह बगीचेमें जमीन गोड़ता या पढ़ने-लिखनेमें लगता। शारीरिक और मानसिक श्रम, दोनोंको वह एक मानता था। उन्हें वह 'बागवानी' कहता। श्रमकी इस भावनाको ही वह कहा करता—'उद्यान'।

दोपहरमें जब मौसम जरा खुला होता तो विशप नगरमें घूमने निकल जाता। कभी खेतोंमें, कभी झोपड़ियोंमें। जहाँ जाता, वहाँ मेला-सा लग जाता। बच्चे-बूढ़े—सभी उसका अभिवादन करते, सबसे वह प्रेमसे मिलता। उनकी बातें सुनता और हरेककी भरसक मदद करता। पैसा रहता तो वह गरीबोंकी तरफ जाता, न रहता तो अमीरोंकी तरफ। जरूरतमंदोंके लिये उसका द्वार हमेशा खुला रहता।

लौटकर वह भोजन करता। अत्यन्त सादा। हाँ, जब कभी कोई क्यूरे आ जाता तो मैग्लेयर इस मौकेका लाभ उठाकर कुछ स्वादिष्ट भोजन बना लेती। भोजनोपरान्त एक घंटे वह बहन और दासीसे बातें करता। फिर कमरेमें जाकर कुछ लिखता-पढ़ता, स्वाध्यायमें डूब जाता। ध्यानमें विभोर होकर पुस्तकोंके हाशियोंपर वह प्रभुके गुणानुवादकी अनेक बातें लिख डालता।

नौ बजेके लगभग बहन और दासी विशपको अकेला छोड़ अपने शयनागारोंमें चली जातीं।

विशपका रहन-सहन अत्यन्त सादा था। उसने दो गायें प्राल रखी थीं। आधा दूध वह अस्पतालके रोगियोंको भेजवा देता। उसके घनी शिष्योंने अनेक बार इस बातके लिये उसे पैसा दिया कि उससे प्रार्थनाकी वेदी सुन्दर बना ली जाय; पर हर बार वह पैसा गरीबोंकी सेवामें लगा दिया जाता। माइरिल कहता, 'किसी दुःखित प्राणीको सुख देना सर्वोत्कृष्ट वेदी है।'

विशपके घरमें कुर्सियाँ बहुत कम थीं। कभी ज्यादा अतिथि आ जाते तो वह इधर-उधरसे टूटी-फूटी सभी कुर्सियाँ जुटाकर उनका स्वागत करता। अपने लिये न रहती तो सबके बीच खड़ा होकर बोलता रहता या जाड़ेमें आगके निकट जाकर खड़ा हो जाता।

विलासकी यदि कोई सामग्री उसके घरमें थी तो थी चाँदीकी छः तश्तियाँ और दो शमादान। यों, वह हर वस्तुका सदुपयोग करनेको सचेष्ट रहता। कहता 'जो शिव' है, वही 'सुन्दर है।' उसका दरवाजा हमेशा खुला रहता। कहता 'डाक्टरकी तरह पादरीका दरवाजा भी दिन-रात खुला रहना चाहिये।'

एक पुस्तकपर उसने लिख रखा था—'डाक्टरके रोगी कहलाते 'बीमार' हैं' मेरे रोगी कहलाते हैं—'अभागे।'

एक जगह उसने लिखा था—'मत पूछो उस आदमीका नाम, जो रातको तुम्हारे घरपर विश्राम करना चाहता है।'

एक बार एक पादरीने माइरिलसे पूछ दिया कि 'दरवाजा खुला रखनेसे कोई दुर्घटना घट जाय तो?' विशपने उसका कंधा थपथपाकर कहा, 'स्वयं ईश्वर जबतक मकानकी रक्षा करता है, तबतक मकान-मालिकको क्या पड़ी है इसकी देख-भाल करनेकी?'

एक बार माइरिल चल पड़ा डाकुओंसे पीड़ित पहाड़ी प्रदेशके लिये। लोगोंने रोका तो विशप बोला 'पहाड़पर

रहनेवाले उन गड़ेरियोंको भी तो जरूरत है कि प्रभुके दैवी गुणोंका संदेश पहुँचानेके लिये कोई उनके पास जाये। क्या सोचेंगे वे लोग उस विशपके बारेमें, जो पासमें रहनेवाले डाकुओंके डरके मारे उनके पासतक नहीं पहुँच पाता?'

'आप पुलिसको साथ लेकर वहाँ जायें।'

'नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।'

'क्रावेटके गिराहवाले आपको लूट लेंगे, प्रभु!'

'मेरे पास है ही क्या लूटनेको?'

'वे आपको मार डालेंगे?'

'बूढ़े पादरीको मारनेसे क्या आयेगा उनके हाथ!'

'हे प्रभु, मान लिया उनसे आपकी भेंट हो जाय तो!'

'तो मैं उनसे कहूँगा कि लाओ भाई, दो हमारे गरीबोंके

लिये कुछ!'

'भगवान्‌के लिये आप मत जाइये, ऐसे संकटमें!'

'नहीं महाशय, मुझे शरीरकी परवाह नहीं, आत्माकी है।'

अकेला माइरिल केवल एक छोटे-से लड़केको अपना पथप्रदर्शक बनाकर चल पड़ा और निर्विघ्नरूपसे अपने लक्ष्यस्थलपर जा पहुँचा। एक पखवारेतक वहाँ रुककर उस पहाड़ी प्रदेशके निवासियोंको प्रभुका संदेश देता रहा।

जब माइरिल वहाँसे चलनेको हुआ, तब उसने 'टीडियम' नामक धार्मिक गायनको पूरे साज-बाजके साथ गानेका निश्चय किया। पर वहाँ उसके लिये उपयुक्त सामग्री कहाँ रखी थी? क्यूरे घबराया तो विशप बोला—'घबराते क्यों हो? तुम घोषणा तो करो। सारा प्रबन्ध अपने-आप हो जायगा।'

जहाँ कोई साज-सामान नहीं था, वहाँ देखते क्या है कि दो घुड़सवार आये और एक बड़ा-सा संदूक गिरजा-घरमें लाकर छोड़ गये। खोला तो देखा कि उसमें अत्यन्त मूल्यवान् कपड़े, रत्नजटित शिरस्त्राण और गायनके लिये सारी सामग्री मौजूद है, जो एम्ब्रनकी लेडीके खजानेसे एक मास पहले चुरायी गयी थी। एक पर्चा भी था, जिसपर लिखा था—'क्रावेटकी ओरसे श्रद्धेय विनवेन्को सादर भेंट।'

'दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं। मैंने कहा न था कि ईश्वर सारी व्यवस्था कर देगा!—विशप बोला। 'उसने आर्क विशपका सामान उस व्यक्तिके लिये पहुँचा दिया, जो छोटे पादरीकेसे कपड़ोंमें ही संतुष्ट रहता है।'

'यह भगवान्‌ने भेजा या शैतानने?' क्यूरेने शङ्का की। 'भगवान्‌ने!' विशपने दृढ़तासे उत्तर दिया।

लौटते समय लोग बड़ी उत्सुकतासे बिशपको देखने आये । बहनसे आकर वह बोला, 'मैंने ठीक ही न कहा था ! गरीब पादरी उन गरीब पहाड़ी गड़ेरियोंके बीच खाली हाथ गया और लौटा तो भगवान् ने उसके हाथ सोने, चाँदी, जवाहरातसे भर दिये । भगवान् पर भरोसा करके मैं गया, लौटा तो गिरजाघरके खजाने लेकर ।'

शामको सोनेके पहले वह बोला 'हमें न डाकुओंसे डरना चाहिये, न हत्यारोंसे । ये खतरे बाहरी हैं, नगण्य हैं । दरअसल तो हमें डरना चाहिये अपने आपसे । सच्चे डाकु तो हैं हमारे द्वेषके भाव, सच्चे हत्यारे हैं हमारे विकार । असली खतरे तो हमारे भीतर भरे पड़े हैं । हमारे बटुए पर या हमारे सिरपर जो हमला करता है, उसकी हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये । हमें चिन्ता करनी चाहिये उसकी, जो हमारी आत्मापर हमला करता है ।'

फिर वह अपनी बहनकी ओर घूमकर बोला—'प्यारी बहन ! हमें अपने पड़ोसीसे चौकन्ने रहनेकी जरूरत नहीं है । वह बेचारा तो वही करता है, जो प्रभुकी इच्छा होती है । कोई संकट आये तो हमें प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह हमारे भाईको हमारे कारण पाप-पङ्कमें न फँसने दे ।'

इस खजानेका क्या हुआ, यह पता नहीं । बिशपके क्लाजमें एक मेला-सा पुर्जा पाया गया था कि 'सवाल है कि यह गिरजाघरको लौटा दिया जाय या अस्पतालके रोगियोंकी सेवामें लगा दिया जाय ?'

कभी-कभी तर्कवादी लोग बिशपको वाद-विवादमें उलझाना चाहते, पर वह शान्तिसे उनकी बातें सुनकर प्रेमसे बहसको टाल देता । एक दिन एक सिनेटर घंटों उससे उलझा रहा । कहता रहा 'खाओ, पियो, मौज उड़ाओ; आकबतकी बात छोड़ो । स्वर्गके सज्ज बागमें क्या रखा है ?' बिशप हँसकर बोला—'आपके भौतिकवादका आकर्षण भी कैसा अद्भुत है ! जिन्हें इसमें कुछ भी सफलता मिली है, वे अपनेको गैरजिम्मेवार माननेमें प्रसन्न होते हैं । जर, जमीन, हरायकी कमाई, सही-गलत तरीकेसे मिली ताकत, मान, प्रतिष्ठा आदि सबको वे पचा जाते हैं । जीवनके आनन्द अमीरोंके ही चोचले हैं । गरीब बेचाराओंको इनसे क्या ?'

माइरिलकी बहनने अपने बचपनकी सहेली वोइशब्रनकी गानीको एक बार एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें अपने भाईके

गुणोंकी चर्चा करते हुए लिखा था कि मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है यह देखकर कि भैया कितना अच्छा है । उसके पास जो कुछ रहता है, उसे वह गरीबोंको और बीमारोंको दे डालता है । हर आदमीके लिये उसका दरवाजा हमेशा खुला रहता है । किसीसे वह डरता नहीं । हर तरहके खतरेमें बिना किसी चिन्ताके कूद पड़ता है । किसीको कानों-कान उसकी खबर भी नहीं लगने देता । जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो, पानी हो, खतरेसे भरी राह हो—उसे कहीं भी, कभी भी जानेमें कोई शिश्क नहीं होती । डर तो उसे बू नहीं गया । कहता है 'हमारे घरमें डरनेके लिये है क्या ? हमारे साथ तो ईश्वरकी वह सत्ता है, जिससे बढ़कर किसीकी सत्ता है ही नहीं । क्या करेगा शैतान यहाँ आकर ?—'

X X X

द—नगरके पास देहातमें जंगलोंसे घिरे प्रदेशमें एक तिरस्कृत व्यक्ति रहता था—एकाकी । पुराना क्रान्तिकारी था वह । सबके लिये वह हौआ बना था । कोई उसके पास न फटकता । वह नास्तिक भी है, ऐसी भी अफवाह फैली थी उसके बारेमें ।

एक दिन बिशपने सुना कि यह व्यक्ति जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है । वह उठकर चल दिया उसकी कुटिया की ओर । पास पहुँचकर बिशपने अपना परिचय दिया तो वह बोला—'आप ही पहले व्यक्ति हैं, जो पहली बार मुझसे मिलने आये हैं । आप मेरे बिशप हैं । धन्यवाद ! मैं अब सिर्फ तीन घंटे और जिऊँगा । मेरा शरीर नीचेसे ठंडा होता आ रहा है । आजका अन्तिम सूर्यास्त देखनेके लिये मैं यहाँ आ बैठा हूँ बाहर ।'

बिशपने उसे छेड़ दिया—'मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि कम-से-कम तुमने राजाकी मृत्युके लिये अपना मत नहीं दिया ।'

'मुझे बधाई देनेकी जरूरत नहीं, महाशय ! मैंने एक निर्दयीके विनाशके लिये अपना मत दिया था ।'

'क्या मतलब ?'

'यही कि मनुष्यके भीतर एक जालिम भरा है, अज्ञानता भरी है । मैंने उस जालिमके विनाशके लिये मत दिया था । मैं नहीं मानता कि किसी मनुष्यको मारनेका अधिकार मुझे प्राप्त है; पर मेरा यह कर्तव्य है कि मैं अन्यायको समाप्त करूँ ।

मैंने अन्यायीकी समाप्तिके लिये मत दिया । मैंने नारीकी वेश्यावृत्तिके उन्मूलनके लिये मत दिया । मनुष्यकी गुलामीके

अन्तके लिये मत दिया। बच्चोंको अन्धकारसे मुक्त करनेके लिये मत दिया। प्रजातन्त्रके लिये मत देकर मैंने मातृत्वके लिये, सम्बन्ध और प्रेमके लिये, प्रकाशके लिये मत दिया। पक्षपातों और भूलोंको मिटानेके लिये मैंने मत दिया। हमने दुःखोंसे अक्रान्त पुरानी दुनियाको उखाड़ फेंका, इसलिये कि मानवता प्रसन्नतासे भर उठे। पर अन्यायको मिटाना ही पर्याप्त नहीं है, जरूरत है आदतें बदलनेकी। हवासे चलनेवाली मिल तो खतम हो गयी, पर हवा तो अब भी बाकी है।

बिशप बोला—‘तुमने विध्वंस तो किया। विध्वंस भी लाभदायक हो सकता है, परंतु क्रोधमें किये गये विध्वंसपर मैं विश्वास नहीं करता।’

‘मान्दयोर विशप, न्यायका अपना क्रोध होता है और उसका क्रोध प्रगतिका एक तत्व है। ईसाके बाद मानवताने सबसे प्रगतिशील जो कदम उठाया है, वह है फ्रांसकी राज-क्रान्ति। भले ही वह अधूरा हो, पर उसकी उत्कृष्टतासे कौन इन्कार कर सकता है? उसने मानवताको पवित्र किया है।’

देरतक दोनोंमें बहस चलती रही। प्रजातन्त्रवादी क्रान्तिकारीकी दलीलें विशपको अभिभूत करती जा रही थीं। वह बोला—‘आप कटु सत्यको पसंद नहीं करते पादरी महोदय! पर ईसाको सत्य प्रिय था। वे शाइलेकर मन्दिर बुधारा करते थे। उनके लिये कोई छोटा, कोई बड़ा नहीं था।

निर्दोषिता स्वयं ही अपना मुकुट है। आप लुई सत्रहवेंकी बात करते हैं। हमें रोना है तो हमें सबके लिये, सब निरपराधोंके लिये, सब शहीदोंके लिये, सब बच्चोंके लिये रोना चाहिये, फिर चाहे कोई छोटा हो, चाहे कोई बड़ा। आप यदि मेरे साथ गरीबोंके बच्चोंके लिये रोयेंगे तो मैं भी आपके साथ राज-कुमारोंके लिये रोऊंगा।’

‘मैं सबके लिये रोता हूँ।’ विशप बोला।

‘समानरूपसे?’ क्रान्तिकारी बोला—‘और यदि संतुलन ठीक न रहे तो पलड़ेको प्रजाकी ओर झुकने देना चाहिये। जनताने सबसे अधिक कष्ट सहन किये हैं।’

बातोंके दौरानमें क्रान्तिकारीने विशपपर भी व्यंग्य किया—‘आप कौन हैं? आप विशप हैं—गिरजाघरोंके राजा हैं आप। सोने-चाँदीसे ढके रहनेवाले, मान-प्रतिष्ठामें इतरानेवाले जीव। आपकी मोटी आमदनी है, महल है, घोड़े हैं, नौकर हैं, विलासकी असंख्य सामग्रियाँ हैं। शानदार मेजें हैं, शानदार दावतें! कौन हैं आप?’

‘मैं एक नाचीज कीड़ा हूँ।’ विशप बोला।

‘क्षमा करें, आप मेरे अतिथि हैं। मुझे आपके विलास और वैभवपर व्यंग्य नहीं करना चाहिये। श्रीमान्जी! मुझे दुःख है आर्कडचेज और रानीके लिये, मेरी एन्टायनेटके लिये; पर मुझे उससे कहीं ज्यादा दुःख है उस गरीब ह्यूजनोंट महिलाके लिये, जो १६८५ में बच्चेको दूध पिलाते समय नंगी करके खंभेसे बाँध दी गयी थी। इधर उसके स्तन दूधसे भरे थे, दिल संतापसे, उधर बच्चा दूधके लिये बिलला रहा था। उस स्त्रीसे, जो माँ भी थी, धाय भी थी, पत्नी भी थी, जल्दादने कहा—‘बोल क्या चाहती है तू? अपने बच्चेकी मौत पसंद करती है या अपनी आत्माको कुचलना?’ महाशय, भूलिये नहीं कि फ्रांसकी क्रान्तिके पीछे ठोस कारण हैं। भविष्य उसके क्रोधको क्षमा कर देगा। उसके फलस्वरूप विश्वमें सुधार होगा। मानवतामें प्रेमका प्रसार होगा।’

विशपने केवल इतना कहा—‘प्रगतिको ईश्वरमें ही विश्वास रखना चाहिये। भलेका सेवक बुरा हो नहीं सकता। नास्तिक पुरुष मानवजातिका बुरा नेता है।’

जनताका वह बूढ़ा प्रतिनिधि शान्त रहा। वह कौंप उठा। उसने आकाशकी ओर ताका। आँसूकी एक बूँद उसकी आँखके कोनेमें इकट्ठी हुई और फिर धीरेसे वह उसके गालपर टुलक गयी। धीमेसे मानो वह स्वगत बोला—

‘हे आदर्श! केवल तेरा ही एकमात्र अस्तित्व है।’

विशप अनिर्वचनीय भावुकतासे भर उठा।

बूढ़ा आकाशकी ओर उँगली उठाकर बोला—‘उस अनन्तका अस्तित्व है। वह कहाँ है? यदि उस अनन्तमें मैं न होता तो ‘मैं’ शान्त होता। परंतु ऐसा नहीं। वह ‘है’ और उसमें मेरा अस्तित्व है। अनन्तका यह ‘मैं’ ही तो परमेश्वर है।’

विशपने देखा कि बूढ़े क्रान्तिकारीके प्राण छूटनेमें अब देर नहीं। बोला—‘ये क्षण प्रभुस्मरणके हैं। क्या हमारा यह मिलन व्यर्थ जायगा?’

उसने आँख खोलकर शान्तिपूर्वक कहा—‘महाशय विशप, मैंने अपना जीवन ईशचिन्तन, मनन और स्वाध्यायमें ही बिताया है। ६० वर्षकी आयुमें जब देशने मुझे पुकारा, तब मैं उठ खड़ा हुआ और अन्यायको उखाड़ फेंकनेको बद्धपरिकर हुआ। मैं कभी अमीर नहीं रहा, आज भी गरीब हूँ। देशके भाग्य-विधाताओंमेंसे मैं एक था; फिर भी मैं सदा गरीबीका ही जीवन बिताता रहा। मैंने दुखियोंको सहारा दिया, पीड़ितोंको

उठाया। यह सही है कि मैंने प्रार्थना-वेदीका कपड़ा फाड़ दिया था, पर देशवासियोंके रक्तका साथ रोकनेके लिये मुझे ऐसा करना पड़ा था। मैंने सदा ही मानवजातिकी प्रकाशोन्मुखी प्रगतिका समर्थन किया है। मैंने दयाशून्य प्रगतिका विरोध किया है। मैंने भरसक अपने कर्तव्यका पालन किया है। लोग मुझसे घृणा करते हैं, मेरी निन्दा करते हैं, मेरा अपमान करते हैं; पर मैंने किसी भी मानवसे घृणा किये बिना सारे तिरस्कारको शान्तिसे झेल लिया है। मौतके किनारे खड़े छियासी सालके इस बूढ़ेसे आप क्या चाहते हैं ?

‘मैं चाहता हूँ तुमपर ईश्वरका आशीर्वाद बरसे।’ कहकर बिशप घुटनोंके बल झुक गया।

बिशपने जब आँख खोली, तब देखा कि क्रान्तिकारीके मुखपर अद्भुत सौम्यता छा गयी है। वह भगवान्‌को प्यारा हो गया !

माइरिल स्वर्गीय आत्माके लिये प्रार्थना करता रहा।

तबसे दुखियों, पीड़ितों और कमजोरोंके लिये बिशपका हृदय और अधिक कोमल, और अधिक प्रेमिल हो गया !

× × × ×

बिशप माइरिलको अपने पदके अनुकूल शान-शौकतसे रहनेका अधिकार था; पर उसे तो विलासकी सामग्रियाँ मानो

काटनेको दौड़तीं। वे उसके कानोंमें चिल्ला-चिल्लाकर कहतीं—‘जब चारों ओर लोग भूखों मर रहे हैं, सर्दिसि ठिठुर रहे हैं, तब किसीको भोगविलासमें लिप्त रहनेका क्या अधिकार है ! वह मानता था कि किसी धर्मोपदेशकमें पहला गुण होना चाहिये—स्वेच्छा-दारिद्र्य।

वह हर काममें, हर बातमें सच्चा ईमानदार, उदार और नम्र रहता। ईश्वरकी वन्दना, धार्मिक अनुष्ठान, दान-पुण्य, दीन-दुखियोंकी सेवा, अतिथि-सत्कार, सादगी, सित-व्ययिता, आत्म-नियन्त्रण, शारीरिकश्रम, स्वाध्याय—इन्हीं सब बातोंसे उसका दैनिक जीवन ओतप्रोत था। आइम्बर, शान शौकत उसने पूर्णतया छोड़ दी थी। उसका हृदय करुणा और प्रेमसे लबालब था। हरेकके लिये उसके हृदयमें प्रेम भरा था। ब्राह्मणों-जैसी पवित्रता और सादगी उसमें भरी थी। रात-दिन, घर-बाहर प्राणिमात्रके प्रति प्रेम विखेरना ही उसका एकमात्र काम था। इसके अलावा न उसकी कोई कामना थी न कोई इच्छा।

प्रेम-मूर्ति माइरिल त्रिनवेन् रात्रिके अन्धकारमें अपने छोटे-से बगीचेमें बैठकर प्रभुकी लीला आँखें पसारकर देखता और चिन्तन-मननमें डूब जाता। उसके सामने रहते—
घरतीपर फूल और आकाशमें तारे।*

तुम एक परिपूर्ण छाये हो

प्राणि-पदार्थ किसीपर भी अब मेरा रहा न कुछ अधिकार।
मुझपर भी अब रहा किसीका किंचित् भी न कहीं अधिकार ॥
कर्म, अकर्म, विकर्म—सभी मिट गये, रहा न कहीं कुछ शेष।
भोक्ताके अभावमें अब कुछ रहा न फलगतिका निर्देश ॥
मिट्टे सभी संकल्प, हो गया सबका तुममें ही अवसान।
कौन, कहाँ, कैसे, क्या करता—रहा न इसका भी कुछ भान ॥
हो जाता, होता दिखता सब, सबमें भरे पूर्ण तुम एक।
मुझे सोचने-कहनेका भी रहा न कुछ अभिमान, विवेक ॥
जीवन-मृत्यु मिटे सारे, मिट गये सभी अब इह-परलोक।
देश-कालकी मिट्टी कल्पना, रहा न किंचित् हर्ष न शोक ॥
नहीं मत्तता, न बुद्धिमत्ता, नहीं शून्यता, नहीं प्रकाश।
तुम परिपूर्ण एक बस, छाये, रहा न तनिक कहीं अवकाश ॥

गीत

तुम प्रतीक्षामें हमेशासे खड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।
 एक सुरभित साँस आती थी कहींसे;
 धूलसे, वन-फूलसे, नभ-तारकोंसे,
 चाँद-स्रजसे, गगन-अन्तःकरणसे,
 या कि मेरी ही शिराओंसे, रगोंसे ?
 इत्रकी कुछ शीशियोंको खोलते ही,
 मूँदते ही उम्र मेरी कट गई है।

तुम प्रतीक्षामें हमेशासे खड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।
 एक झिलमिल जोत आती थी कहींसे;
 सरवरों, नद-निर्झरोंसे, सागरोंसे,
 बादलोंसे, विजलियोंकी पायलोंसे,
 या कि मेरे ही दृगोंके दायरोंसे ?
 मृत्तिकाके कुछ दियोंको ही जलाते
 औ बुझाते उम्र मेरी कट गई है।

एक हीरकसे हृदयमें तुम जड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।
 तुम प्रतीक्षामें हमेशासे खड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।
 एक अस्फुट गूँज आती थी कहींसे;
 मधुकरोंसे, वन-विहंगोंके पारोंसे,
 घन-पवनसे, पावसी रिमझिम झरनसे,
 या कि मेरे आँसुओंके सीकरोंसे ?
 छन्दकी बहु श्रृङ्खलाएँ जोड़ते ही,
 तोड़ते ही उम्र मेरी कट गई है।

किंतु ढाई अक्षरोंमें मुक्तिका गुरु
 मन्त्र अभिमत गुणगुनाते तुम पड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।
 तुम प्रतीक्षामें हमेशासे खड़े थे,
 और मैंने ही न देखा।

मनोहर घाट

(लेखक—पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न)

पशुवरधशमस्तं रामनामानुरक्तं
दास्यनिष्ठात्मसक्तं दासतुलसीसुभक्तम् ।
विदलितकलियक्षं नाशकृतकामरक्षं
काव्यशिल्पैकदक्षं नौमि सद्भक्तिपक्षम् ॥

श्रीरामराज्यकालीन श्रीसरयूजीके कुछ मुख्य-मुख्य घाटों-का वर्णन करते हुए श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा ॥

जहाँ घोड़ों एवं हाथियोंके झुंड जल पीते थे अर्थात् जहाँ पशुओंको जल पिलया जाता था, वह पशुघाट, अश्वघाट, गज-घाट, गोघाट आदि शहरसे दूर बड़े विस्तृत रूपमें था । वह घाट राज्यकी ओरसे ही था, शिल्पियों अर्थात् कारीगरों-मिस्त्रियोंके नामसे न प्रसिद्ध होकर जिनके उपयोगमें आता था, उस घाटसे जिनका काम चलता था, वे घाट उन (वाजि-गजादि पशुओं) के नामसे वाजिघाट, गजघाट, पशुघाट और गायघाट आदि नामोंसे ख्यात था । जिस घाटसे स्त्रियाँ जल ले जाती थीं तथा स्नानादि करती थीं, जहाँ पुरुषोंका जाना सर्वथा वर्जित था, उन घाटोंको पनिघट, नारीघाट (जनानाघाट) आदि कहा जाता था—

पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहिं अज्ञाना ॥

परंतु उन घाटोंको पानी भरनेवालों किंवा स्नान करने-वालों (स्त्रियों) ने नहीं बनाया था, प्रत्युत बनाया तो था शिल्पियोंने; फिर भी उन शिल्पियोंके नामसे ख्यात न होकर वे घाट काम लेनेवालोंके नामसे विख्यात हुए—पानघट अर्थात् स्त्रियोंका घाट आदि । इसी तरह राज्यके चारों वणोंके लिये जो घाट निर्मित था, वह पंचायतीघाटके नामसे विख्यात था अर्थात् उसका नाम राजघाट था—

राजघाट सबही बिधि सुंदर । मजहिं तहाँ बरन चारिउ नर ॥

वह भी बनानेवाले शिल्पियोंके नामसे प्रसिद्ध नहीं था । यह तो हुई मानसकी बात । अन्य ग्रन्थोंके अनुसार जिस घाटपर श्रीरामजी नियमितरूपसे स्नान-पूजन-दान आदि करते थे, उसका नाम 'रामघाट' ख्यात था । वह बनानेवाले शिल्पी-कारिगरके नामसे नहीं ख्यात हुआ । ऐसे ही श्रीजानकीघाट, श्रीकौसल्याघाट, श्रीकैकेयीघाट, श्रीसुमित्राघाट आदि थे, जिनकी

चर्चा एवं माहात्म्य रुद्रयामलमें विस्ताररूपसे देखा जा सकता है । निष्कर्ष यह कि घाट उसके नामसे विख्यात होता है, आरम्भमें जिसके उद्देश्यसे निर्माण किया जाता है अर्थात् काम लेनेवालोंके नामसे या द्रव्य देकर निर्माण करानेवालोंके नामसे, परंतु निर्माण करनेवाले शिल्पियोंके नामसे नहीं । ऐसा नियम सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन है । फिर न जाने क्यों—

सुष्ठि सुंदर संवाद वर बिरचेउ बुद्धि बिचारि ।

ते यहि पावन सुमग सर घाट मनोहर चारि ॥

—इस दोहेकी व्याख्या करते समय लोग तत्तद् घाटोंको शिल्पियोंके गुणानुसार घाटका नाम देते हैं । जैसे परमशानी ब्रह्मर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजीके कर्मकाण्डप्रधान शतपथब्राह्मणके वक्ता होनेके कारण या स्मृति-निर्माण करनेके कारण ही उनके घाट श्रीयाज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादको कर्मघाट, महाभागवत भगवान् शंकरजीके ज्ञानशिरोमणि होनेके कारण उनके घाट श्रीशिवा-शिव-संवादको ज्ञानघाट, सर्वगुणागार मायाविजयी कार्कषि श्रीभुशुण्डिजीके अनन्य श्रीरामोपासक होनेके कारण उनके श्रीभुशुण्डि-गरुड़-संवादको उपासनाघाट और श्री-गोस्वामीजीके वक्तव्य—उनके मनः-संत संवादको दैन्यघाट कहा करते हैं और अनेक युक्तियोंसे इसकी चूल भिड़ाया करते हैं । मैं अनुमान करता हूँ कि आरम्भमें घाटसे काम लेनेवालों, भरद्वाज, उमा, गरुड़ आदिके नामसे तत्तद्गुण-कर्मानुसार मानसके घाटोंका नाम न देकर घाटके शिल्पियों—याज्ञवल्क्य, शिव, भुशुण्डि एवं गोस्वामीजी आदिके गुण-कर्मानुसार नाम देनेकी जो प्रथा है, उसके मूलमें एकमात्र गतानुगतिकत्व ही कारण है, अर्थात् किसी टीकाकारने जो शिल्पियोंके नामोंसे घाटोंकी प्रकल्पना की तो अनेक लिक्खाड़लोग उसीको प्रमुखता प्रदान कर अनेक युक्तियोंसे उसीको पुष्ट करनेमें अपना महत्व मानने लगे । कभी स्वयं भी विचारनेका कष्ट बुद्धि या मस्तिष्कको नहीं दिया । पर विचार करें तो कैसे करें जब कि परभावानुसार मानने, चलने किंवा परभावापहरणमें ही अनेक स्वयम्भू रामा-वर्णियोंका समस्त विद्या-बुद्धि-विलास है । इसी कारण आजसे डेढ़-दो सौ वर्षोंसे लोग रामचरितमानसके घाटोंका नाम वैसे ही मानते आये हैं । [मेरे डेढ़-दो सौ वर्ष कहनेका तात्पर्य

यह है कि मानसपर कोई भी प्राप्य टीका डेढ़ सौ वर्षसे भी कम कालकी ही है। आज दिन नौ सौ नित्यान्वे प्रति सहस्र रामायणियों, व्यासों, कथावाचकों, टीकाकारों और लेखकों आदिका समस्त आधार अपनेसे पूर्व टीकाएँ ही रहती हैं, नानापुराणनिगमागमादिका अनुशीलन नहीं। अस्तु] “घाट मनोहर चारि” के सम्बन्धमें मैं जो यहाँ लिख रहा हूँ, उसके लिये यह दावा नहीं कर रहा हूँ कि यही भाव सर्वथा ठीक है, इसके अतिरिक्त और दूसरा अन्य अर्थ हो ही नहीं सकता। प्रत्युत मनीषियोंके सामने एक नवीन अर्थमार्गकी योजना रख रहा हूँ। विद्वानोंको शास्त्रोंका आश्रय लेकर ही सत्कर्माग्रहपूर्वक विचार करना चाहिये, तब मानने और न माननेकी बात करनी चाहिये। इससे भी सुन्दर और शास्त्र-सम्मत एवं सत्कर्तानुमोदित अर्थ—प्रशस्त भाव सुझानेपर मैं सहर्ष मानूँगा और अन्योको भी माननेके लिये बाध्य करूँगा। मेरा अपने ही लेख, अपनी ही सूझ-बूझपर कभी दुराग्रह नहीं रहा और आगे भी दुराग्रह नहीं ही रखना चाहता हूँ; परंतु मैं अकारण गतानुगतिक बनकर भी नहीं रहा करता, जब कि श्रीजीने थोड़ी-सी शास्त्र-विवेचनी शक्ति प्रदान की है।

श्रीरामचरितमानसकी टीकाओंमें जो घाटोंकी पूर्व, दक्षिण आदि दिशाओंकी कल्पना की गयी है, मेरी समझसे वह ठीक नहीं, प्रत्युत प्रकल्पनामात्र ही है; क्योंकि यह तो जंगम मानसपर है, इसमें निश्चित दिशा कैसे रह सकती है। दूसरे, दार्शनिक दृष्टिसे जो वस्तु एक व्यक्तिसे पूर्व दिशामें है, वही वस्तु उससे पूर्वमें रहनेवाले व्यक्तिके पश्चिममें होती है। अतः दिक्प्रकल्पना भी ठीक नहीं। इससे मैं घाटोंकी दिक्कल्पनाको छोड़कर तत्त्व-रूपानुरूप घाटोंके नाम और रूपका ही दिग्दर्शन कर रहा हूँ।

श्रीरामचरितमानस एकमात्र भक्तोंकी वस्तु है, एतदर्थ इसपर भक्तोंका ही अधिकार है, जैसा कि सभी वक्ताओंने अन्तमें कहा है। महर्षि लोमशने कागराजसे कहा कि तुम यदि रामभक्त न होते तो मैं यह रामचरितसर तुमसे कदापि न कहता; तुम परम रामभक्त हो, अतएव—

तोहि निज भक्त राम कर जानी । ताते मैं सब कहेंउ बखानी ॥

श्रीगरुड़जी—

‘ज्ञानी भगत शिरोमणि त्रिभुवन पतिकर यान ।

‘हरि सेवक अति निकट निवासी ॥’

—हैं; इसीसे कागराजजीने भी कहा है कि आप तो—

कृपा पात्र रघुनायक करे ॥

राम कृपा भाजन तुम ताता । हरि गुण प्रीति मोहि सुखदाता ॥
ताते नहिं कछु तुमहिं दुरावौ । परम रहस्य मनोहर गावौ ॥

श्रीशिवजीने श्रीगिरिजाजीसे कहा —

तब मन प्रीति देखि अधिकाई । तब मैं रघुपति कथा सुनाई ॥ से
ता कहँ यह विशेष सुखदाई । जाहि प्राण प्रिय श्री रघुदाई ॥

—तक मनन कर लेना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा कि—

‘राम भक्त तुम मन क्रम बानी ।’

‘राम उपासक जे जग माहीं । यहि सम प्रिय तिन के कछु नाहीं ॥’

और श्रीमद्गोस्वामीपादका कहना है —

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ।

जो वस्तु जिसके योग्य हो, वह वस्तु उस अधिकारीको ही देनी चाहिये। यह श्रीरामचरितमानस भक्तोंकी वस्तु है, इसीसे इसके आरम्भिक वक्ताओंने इसे श्रीरामभक्तोंको ही सुनाया था। अतः घाटके रूपकमें सुनानेवाले वक्ता ही घाटके निर्माता ‘शिल्पी’ हुए और प्रधान श्रोता ही घाटके अधिकारी हुए, अतः उन्हींके नामसे घाट होना चाहिये। और वे सब श्रोतागण भक्त तो हैं पर हैं विभिन्न श्रेणीके भक्त—इसे भी स्मरण रखना चाहिये।

श्रीभगवान्ने गीतामें भक्तोंको चार श्रेणियोंमें विभाजित किया है —

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आतों जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

(७ । १६)

इन्हीं चारोंको श्रीगोस्वामिपादने कहा है —

राम भक्त जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥

श्रीरामचरितमानसके श्रोता—प्रथम प्रधान श्रोता आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी और अर्थार्थी—इन्हीं चार श्रेणियोंमें आते हैं। अतः चाहे चारों घाटोंको उन चारोंकी भक्तिके अनुरूप आर्तघाट, जिज्ञासुघाट, अर्थार्थीघाट और ज्ञानीघाटके नामसे किया जाय अथवा श्रोताओंके वर्गानुकूलनामसे घाटको संकेतित किया जाय अर्थात् देवघाट, पक्षीघाट, मनुष्यघाट और महर्षिघाट—इनका सांकेतिक विवरण यह होगा कि प्रकृत मानसरोवरपर देव, मुनि, संत, साधारण मनुष्य

एवं पक्षी आदि सभी जाते हैं। उस मानसरोवरका पूर्ण रूपक बताते हुए कहा गया है—

१—ते सुरवर मानस अधिकारी ।

२—ते बिचित्र जलबिहङ्ग समाना ॥

ते शुक्र पिक बहु बरन बिहंगा ।

३—संत समा चहुँदिशि अमराई ।

४—ते नर यह सर तजहि न काऊ ।

आजदिन मानसरोवरके यात्रियोंको देवदर्शन तो नहीं होते परंतु वहाँ उच्चकोटिके संत एवं साधारण मनुष्य तथा अनेक पक्षी-गण तो मिलते ही हैं। किंतु वहाँ किसीके लिये अलग-अलग या सम्मिलितरूपसे ही कोई घाट नहीं बना है और इस श्रीरामचरितमानस-सरोवरकाव्यमें चारोंका घाट है। यद्यपि चारों वर्गवाले चारों घाटोंसे जलपान आदि कर सकते हैं, करते हैं और पूर्वमें कर चुके हैं, फिर भी सबका अपना अलग-अलग घाट भी कल्पित है।

स्मरण रखना चाहिये कि श्रीगोस्वामीजीने मानस-काव्यमें चारों वक्ताओंके कथनको कहीं तो वक्ताका नाम या श्रोताको सम्बोधित करना लिख दिया है, इससे तो खुल जाता है कि इस प्रसङ्ग अथवा प्रसङ्गांशके वक्ता प्रधानतः कौन हैं। पर वहाँ नाम लेकर नहीं बताया गया है, वहाँ इसके निर्णयमें प्रायः बड़ी कठिनाई पड़ जाती है कि किस वक्ताके कौन शब्द हैं। बहुत अन्वेषणके बाद ऐसा ज्ञात होता है कि जिस प्रसङ्ग या प्रसङ्गांशके प्रधान वक्ता शिवजी हैं और शिव या भवानीका नाम वहाँ नहीं है, उस स्थलपर कविने अपनेको अपने पूर्ण नाम 'तुलसीदास' शब्दसे सम्बोधित किया है। जिस प्रसङ्ग या प्रसङ्गांशके प्रधान वक्ता मुनिवर याज्ञवल्क्यजी हैं और वहाँ वक्ता-श्रोता दोनों मुनियोंके नाममें किसीका संकेत नहीं है, उस स्थलपर कविने अपने नामका व्यतिक्रम अर्थात् 'दास तुलसी' शब्दसे सम्भोग दिया है। जिस प्रसङ्ग या प्रसङ्गांशके प्रधान वक्ता कर्कषि भृगुण्डिजी हैं, वहाँ अपना कोई नाम नहीं दिया है और जिस प्रसङ्ग या प्रसङ्गांशके वक्ता स्वयं श्रीमद्गोस्वामिपाद ही हैं, वहाँ अपना आधा नाम 'तुलसी' या निकृष्ट विशेषणयुक्त 'मतिमन्द तुलसीदास', 'शठ तुलसीदास', 'मूढ़ तुलसीदास', 'मन्दमति तुलसी', 'महामंदमन' 'या मूढ़ मन्दमन' आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं। मेरी समझसे यही तत्त्वघाटोंकी सुन्दर पहचान है। घाटोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है—

(१) शानीघाट या मुनिघाट

शानीके दो भेद कहे गये हैं—एक स्वबलाभिमानि (शुष्क शानी), दूसरे भगवद्भक्त (भक्त्याश्रित शानी) । शुष्क शानी स्वबलप्रधान होता है—

जनहि मोर बल निज बल ताही ।

स्वबलप्रधान होनेके कारण शुष्क शानीका पतन होता है। यथा वेदवाक्यका प्रमाण—

जे ज्ञान मान विमत्त तब भव हरणि भक्तिन आदरी ।

ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

येऽन्येऽरविन्दाक्ष

विमुक्तमानिन-

स्वयस्यसभावांदविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनादृत्युष्मदङ्घ्रयः ॥

(भागवत १०।२।३२)

परंतु भक्त्याश्रितका पतन कभी नहीं होता—

ताते नास न होइ दास कर ।

महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्य और श्रीभरद्वाजजी दोनों शानी भक्त हैं—

‘तेहि सन याज्ञवल्क्य पुनि पावा । तिन पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥’

‘ते श्रोता वक्ता सम शीला । समदर्शी जानहिं हरि लीला ॥’

‘जानहिं तीन काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ॥’

‘भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । जिनहिं राम पद अति अनुरागा ॥’

‘तापस शम दम दया निधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥’

‘याज्ञवल्क्य मुनि परम विवेकी’

दोनों शानी भक्त हैं, अतः इनके संवादमें भक्तिमयी (स्त्रीलिङ्गात्मिका) कथाकी प्रधानता है और गुण तथा चरित्र गौण हैं।

प्रधान कथा—

‘याज्ञवल्क्य जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनि वरहिं सुनाई ॥’

‘सो मैं तुम सन कहौ सब, सुनु मुनीश मन लाइ ।

राम कथा मंगल करनि कलिमल हरनि सुहाइ ॥’

‘बहु लालसा कथा पर बाढ़ी ॥’

चरित्र गौण—

राम चरित अति अमित मुनीसा । कहि न सकहिं शत कोटि अहीसा ॥

जहाँ शतकोटि अहीश असमर्थ हैं, वहाँ हम किस गणनामें रहे ।

गुण गौण—

‘चाहौ सुनइ राम गुन गूढ़ा ।’

‘प्रनमौ सोइ कृपालु रघुनाथा । बरनौ विशद जासु गुन गाथा ॥’

(२) आर्तघाट या देवघाट

श्रीशिवजी देववर्गमें हैं । इस घाटकी रचना श्रीगिरिजाजीके लिये ही हुई है और गिरिजाजी आर्त भक्ता हैं, जैसा कि उन्होंने स्वयं ही स्वीकार करते हुए बारबार कहा है—

‘अति आरत पूछौं सुरराया ।.....’

‘गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहि । आरत अधिकारी जहँ पावहि ॥’

अति आर्त-निर्बल होनेसे श्रीशिवाजी परम समर्थ श्रीशिवजीका आश्रय ग्रहण करते हुए कह रही हैं—

प्रभु समर्थ सर्वश शिव सकल कला गुन धाम ।

बिना सामर्थ्य (पौरुष) के आर्तिनाशन-कार्य नहीं हो सकता अतएव पौरुषप्रधान होनेसे इस आर्तघाटके वक्तव्यमें पौरुषप्रधान (पुष्टिगात्म) चरित्रकी प्रधानता है और कथा तथा गुण गौण हैं—

चरित प्रधान—

‘शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा ।’

‘सुनु शुभ कथा भवानि राम चरित मानस विमल ॥’

‘सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ ॥’

‘सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाव ।’

‘जासु चरित अवलोकि भवानी ॥’

‘तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी ॥’

‘यह सब रुचिर चरित मैं भाखा ॥’

‘राम चरित शत कोटि अपारा ॥’

‘रामचरित जे सुनत अवाहीं ॥’

‘हरि चरित्र मानस तुम गावा ॥’

‘यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा ॥’

कथा गौण—

‘कही कथा सुंदर सुख हेतू ।’

‘हरिगुण नाम अपार कथा रूप अगणित अमित ।’

‘गिरिजा सुनहु विशद यह कथा ।’

गुण गौण—

‘विषयिन कहँ पुनि हरि गुण ग्रामा ।’

(३) जिज्ञासुघाट या पक्षिघाट

श्रीगरुड़जी जिज्ञासु भक्त हैं । उनकी जिज्ञासाकी प्रधानता तबतक रही, जबतक वे कागराजके पास थे । उन्हें वहाँ नयी-नयी जिज्ञासा होती गयी, प्रश्नपर प्रश्न करते ही गये । जिज्ञासाकी शान्ति गुणावबोधसे होती है, उसके लिये बल किंवा महिमाकी अपेक्षा नहीं रहती । अतः जिज्ञासुघाटपर गुण प्रधान और चरित्र तथा कथा गौण हैं—

गुण प्रधान—

राम काम शतकोटि सुमग तन । से

राम अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ ॥ तक ।

‘सुमिरि राम के गुन गन नाना । पुनि पुनि हर्ष मुगुंडि सुजाना ॥’

चरित गौण—

कहेउ नाथ हरि चरित अनूपा । व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥

कथा गौण—

कथा समस्त मुगुंडि बखानी ।

(४) अर्थार्थीघाट या मानवघाट

मानव स्वभावतः अर्थार्थी है । अर्थी व्याक्तमें पुरुष, स्त्री, नपुंसक—किसीकी भी प्रधानता या गौणता नहीं रहती । उसे तो अपने अर्थसे प्रयोजन रहता है । अतः अर्थार्थीघाटपर तीनोंकी एकरसता है ।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदम् ।

‘रघुपति कृपा यथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥’

‘रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं । संतत सुनिय राम गुन ग्रामहिं ॥’

‘मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूकर खेत ।’

‘कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥’

जैसे चरित्र, गुण और कथामें एक प्रधान और दो गौण सबमें हैं, वैसे ही चारों श्रेणियोंके भक्तोंमें ज्ञान, आर्ति, जिज्ञासा और अर्थार्थित्वमें एक प्रधान और शेष तीनों भक्तियों गौण रूपसे रहती हैं ।

मुझपर भगवान्की निरन्तर अपार कृपा-वर्षा हो रही है

मुझपर भगवान्की निरन्तर अपार कृपा-वर्षा हो रही है, तभी तो आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सभी स्थानोंमें सभी समय मैं केवल भगवान्को ही देखता हूँ । मेरी दृष्टिमें एकमात्र भगवान्के सिवा और किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिकी सत्ता ही नहीं रह गयी है; क्योंकि मुझपर भगवान्की अपार कृपा-वर्षा निरन्तर हो रही है ।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भाईका स्नेह

रामविलासजी तथा हरमुखरायजी दोनों भाई थे। घर सम्पन्न था। किसी कारणवश दोनोंने अलग हो जाना अच्छा समझा। बँटवारा हो गया। दोनों भाई अलग-अलग कारोबार करने लगे। आपसमें बिना संदेह लेन-देन भी चलता ही था। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था। दोनोंके लड़के बड़े हो गये और व्यापारका काम करने लगे। पर भाग्यकी बात—रामविलासका व्यापार उन्नत होता गया और हरमुखरायका मिरता गया। लगभग सत्तर हजारसे कुछ अधिक रुपये रामविलासकी फर्मके हरमुखरायकी फर्मके नाम पड़ते थे। हरमुखरायका फर्म फेल हो गया। रामविलासको बहुत दुःख हुआ, परंतु सारा कारोबार लड़कोंके हाथमें था। अतः वे कुछ कर नहीं सके। जमीन-जायदाद दोनोंके पास अभी थी। रामविलास बहुत बूढ़े हो गये थे। उनके मनमें एक दिन यह विचार आया कि 'हमारी फर्मके बहुत बड़ी संख्यामें रुपये भाई हरमुखरायमें पावने हैं। हरमुखराय भी मरणासन्न हैं और मैं भी मरणासन्न हूँ। हरमुखरायके लड़के गरीबी हालतमें हैं। रुपये यदि उनके नाम पड़े रहे और मेरे लड़कोंने हरमुखरायके लड़कोंको तंग किया या उनकी जमीन-जायदाद पर मन चलाया—यद्यपि लड़के ऐसे अभी हैं नहीं—तो बहुत बुरी बात होगी।'।

यह सोचकर वे अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके एक दिन गद्दीपर पहुँचे। उनके अपने नाममें लगभग इतने ही रुपये फर्ममें जमा थे, जो मरनेपर उनके लड़कोंकी ही सम्पत्ति होते। उन्होंने जाकर मुनीमसे बही माँगी और भाई हरमुखरायके खातेके सारे रुपये व्याजसमेत जमा करके अपने खातेमें नाम लिख दिये और हरमुखरायका खाता चुकता कर दिया। हरमुखरायको इसकी सूचना भी नहीं दी।

हरमुखरायको इस बातका पता भी नहीं था। वे बड़े ईमानदार थे। अपनी जमीन-जायदाद बेच-बेचकर वे लोगोंके रुपये चुका रहे थे। बड़े भाईके मृत्युको भी वे एक बड़ी जमीन तथा मकान बेचकर चुकानेकी व्यवस्था कर रहे थे। इसी बीच उन्हें पता लगा कि बड़े भाई साहबने मेरा खाता अपने रुपये देकर चुकता कर दिया है तो उनके नेत्रोंसे स्नेहके

आँसू झरने लगे। वे भाईके चरणोंमें आये, और बोले—'आपने ऐसा क्यों किया ? मैं तो रुपये दे ही रहा था।' बड़े भाई रामविलासके नेत्र भी झरने लगे, उन्होंने भाईको गले लगा लिया। दोनों रोने लगे। यह दृश्य देखकर रामविलासजीके भले लड़कोंका हृदय भी द्रवित हो गया। फिरसे दोनों फर्म एक कर लिये गये और आनन्दका स्रोत बह उठा।

—गोविन्दराम

(२)

भगवद्दर्शन*

(क)

त्रिभुवननाथ सड़कपर खड़ा 'हाय ! हाय !' कर रहा था। उसकी दशा अत्यधिक दीन थी। बूढ़ा, कम्पायमान, दृष्टिहीन, डगमग-डगमग पाँव, रक्तहीन, बहुत फटे पुराने वस्त्र।

'हाय, कपड़ा ! हाय, कपड़ा !'

मगर किसीको क्या ?

उसकी बड़ी चिल्लाहट थी। मैंने अपना दफ्तरका काम बंद कर दिया। उसे अपने पास बुलवाया, उसे बहुत ही सत्कार, प्रेम, आत्मीयताके साथ कुर्सीपर बिठलाया। उसके नेत्रोंका जल रुक गया।

मैंने उससे मिष्ट भाषण किया।

एक 'हुअन्नी' मात्र मैंने 'उसको' दी। अहा ! न तो 'उसकी' गद्गदताकी ही कुछ सीमा रही और न 'उसके' आशीर्वादोंकी बौछारकी। उसीको नमस्कार।

(ख)

वह मेरे जीवनका सबसे खास दिन था। उस दिन 'उस' ने मुझे निहाल कर दिया !

कुछसे गलित वह बंद कोठरीमें पड़ा था। टट्टी-पेशाब सब वहीं। दुर्गन्ध अपार थी, मगर मैं उसे सुगन्ध मानता हूँ। 'उस' ने मुझे स्वयं आवाज देकर बुलाया—'मुझे जल ला दोगे ?'

* एक आदरणीय 'बन्धु' के सम्पादकके नाम आये हुए पत्र।

सम्पादक—

मैं सन्न रह गया ! 'यह त्रिलोकीनाथ अखिलेश्वर है ! मेरी परीक्षा ले रहा है ।'—मैंने अपनेसे कहा ।

वह बहुत ही कराह रहा था । जिस चारपाईपर वह पड़ा था, उससे अधिक खराब चारपाई संसारमें न होगी ।

मैंने सद्भावपूर्वक सावधानीसे उसकी आज्ञाका पालन किया । कुल एक लोटा जल बाहर नलसे भरकर ला दिया । उसका दूध-फूटा लोटा बहुत ही दयनीय दशामें था । उस रोज 'वह' बहुत उपकृत हुआ । बहुत आशीर्वाद देता रह गया !

(ग)

कल 'वह' चोरी करते पकड़ा गया और वह भी एक लड्डूकी ! लड्डू कैसा—आटे और गुड़का ।

'वह' बहुत शर्माया और पानी-पानी हो गया ।

हमलोगोंने कुछ भी बुरा न माना ! द्वापरमें 'वह' माखनचोर था । अब लड्डू चुराता है, तो नयी बात क्या हुई ?

यह 'उस'की रिपोर्ट है । XXX हमें आप यह समझाइयेगा कि ऐसी दशामें हम 'उसे' आपका प्रणाम कैसे निवेदन किया करें ।

(घ)

परसों मैंने 'उस'का पक्ष लिया और विपक्षियोंके प्रति कड़े शब्दोंका प्रयोग किया ।

'वह' बुरी तरह हॉफ रहा था और उसपर मार पड़ रही थी । उसे ऊपर चढ़नेके लिये बाध्य किया जा रहा था । 'वह' लज्जित था; क्योंकि जिस गाड़ीमें 'वह' जुता था, उसपर गन्नेका बेतोल बोझ लदा था । हाय ! उस समय 'वह' एक मूक बेबस भैंसेके रूपमें था ।

मैंने क्रोधका प्रयोग किया । 'यदि 'इस'के जिह्वा होती तो 'वह' तुम्हारे खिलाफ वाणीका प्रयोग करता; यह तुमपर अदालतमें दावा करता और तुम्हें सजा भोगनी पड़ती । तुम अन्यायपर तुले हो ! तुमने दयाको तिलाञ्जलि दे दी है । भगवान्का खौफ करो ।'—मैंने 'उसे' पीटनेवालोंको चेतावनी दी । वे लोग शर्माये और हँसे भी । उन्होंने अपनी गलती मान ली और 'उसे' पीटना बंद कर दिया । वह अब स्वयं ही जोर लगाकर ऊपर चढ़ रहा था । 'वह' मुझे आशीर्वाद देता हुआ प्रतीत होता था । 'उस'को नमस्कार ! उसीकी जय ।

मैंने उन लोगोसे फिर कहा—'ज्यादा बोझ मत लादो

करो । रहम किया करो; जरा शर्म किया करो ।' उन लोगोंने स्वीकार किया ।

(३)

फिजूलखर्चीका परिणाम

कुछ समय पहले मैं नागपुर गया था । वहाँ मैं एक गुजराती लॉजमें ठहरा । इस लॉजमें बम्बईकी एक कम्पनीमें सेल्समैनके पदपर काम करनेवाले एक भाई ठहरे हुए थे । बम्बईके सेल्समैन श्रीधीरूभाईने जो अपने अनुभवकी बात बतायी, वह बहुत उपयोगी जान पड़ती है ।

'पिताजी बचपनमें ही स्वर्गवासी हो गये थे । इससे घरकी सारी जिम्मेवारी मुझपर आ पड़ी थी । उस समय मेरी उम्र सत्रह वर्षकी थी । मेरे मामाका घरका कारखाना था, इसमें मुझे नौकरी देनेके लिये मैंने उनसे कहा; परंतु उन्होंने 'अभी छोटी उम्र है'—कहकर मुझे नहीं रक्खा । फिर बम्बईमें मैं एक सेल्समैनके पदपर नियुक्त हुआ । इसलिये मुझे इरेक बड़े शहरमें जाना पड़ता । अपने एक दूसरे भाई भी बम्बईकी एक प्रसिद्ध कम्पनीमें नौकरी करते थे । उन्हें मासिक (५५०) (पाँच सौ पचास) रुपये वेतन मिलता था, इसके अतिरिक्त उन्हें प्रतिदिन १८) (अठारह) रुपये भत्ता मिलता था । एकवार मैं कम्पनीके कामसे दिल्ली गया था । वहाँ वे भाई भी आये हुए थे । मैं तो दैनिक १) (एक) रुपया किरायेके कमरेमें ठहरा था । परंतु उन्होंने पाँच रुपये रोजके भाड़ेका कमरा ले रक्खा था । दोनों गुजराती होनेके कारण हमलोगोंमें बड़ा मेलजोल हो गया । परंतु उनको जब मैं पैसे उड़ाते देखता, तब मुझे बड़ा ही दुःख होता । दिल्लीमें उन्होंने मुझसे कहा—'चलो, होटलमें नाश्ता कर आयें ।' मैं कपड़े पहनकर तैयार हो गया, तब उन भाईने मुझसे कहा—'इस तरहके कपड़े पहननेवालोंको होटलमें घुसने नहीं दिया जाता । उस होटलमें जानेके लिये अच्छी-से-अच्छी पोशाक चाहिये ।'

मैंने कहा—'इससे अच्छे कपड़े मेरे पास नहीं हैं ।' तब उन्होंने मुझे अपने अच्छे कपड़े पहनाये और नेकट्राई गलेमें बाँधी । हम दोनों 'अपट्रूडेट' होकर होटलमें पहुँचे । मैंने अपने जीवनमें कभी न देखी हुई व्यवस्था वहाँ देखी । वहाँ हमलोगोंने आइसक्रीम, चाय आदि खाने-पीनेके साथ ही नाश्ता भी किया । एकाध घंटा वहाँ बीता । फिर होटलका बिल आया । हाथमें लेकर मैंने देखा साढ़े सत्रह रुपयेका बिल था । मैंने तुरंत ही बिल उन भाईको दे दिया । मेरी जेबमें तो शायद इतने पैसे भी नहीं थे । उन भाईने बिलके साथ

ही डेढ़ रुपया नौकरको इनाम दिया। इस प्रकार उन्होंने उन्नीस रुपये चुकाये। तदनन्तर हमलोग अपने कमरोंमें वापस आ गये।

इस बातको छः-सात महीने बीते होंगे। मैं घूमता-घामता कलकत्ते पहुँचा और वहाँ 'गुजराती समाज' के मकानमें गया। वहाँ मैंने उन भाईको देखा। पर यह क्या? क्या ये वे ही भाई हैं, जो मुझे दिल्लीमें मिले थे? मनमें शङ्का हुई। आँखोंने बार-बार सावधानीसे देखकर निश्चय किया कि 'हैं तो वे ही'। अन्तर इतना था कि आज न तो उस दिन-सरीखे कपड़े थे न सिरमें तेल ही था। आँखोंमें उस दिनकी मादकताके स्थानपर दरिद्रता भरी थी। गोरे मुखपर श्यामता छा रही थी। मैंने पूछा—'क्यों भाई! यों निस्तेज-से कैसे हो रहे हैं? प्रथम श्रेणीके लॉजमें फर्स्टक्लास किरायेके कमरेमें उतरनेवाले आप यहाँ कैसे पड़े हुए हैं?'।

उन्होंने धीरेसे कहा—'भाई! वह नौकरी छूट गयी! अब मैं बेकार हूँ। कहीं भी काम नहीं मिलता।'।

मैंने कहा—'आप इस समय दुखी हैं, इसलिये मेरा आपसे कुछ कहना उचित तो नहीं है; तो भी मैं कहता हूँ कि उस नौकरीके समय आपकी आमदनी एक हजार रुपये मासिक थी। उस समय आपने आधे रुपये बचाये होते तो भी आज आप २५०००) (पचीस हजार) रुपयेकी बचत कर सकते और उन रुपयोंसे आज चाहे जैसा रोजगार कर सकते तथा इस बेहाल परिस्थितिसे बच जाते।'।

उन्होंने कहा—'अब तो जो होना था सो हो चुका। इस समय तो आप मुझे पचास रुपये उधार दीजिये।'।

मेरे पास केवल पैंतीस रुपये थे और मुझे पटने जाना था। इसलिये मैं उनको उनमेंसे केवल पाँच रुपये दे सका और वहाँसे चल पड़ा। एकाध महीनेके बाद मुझे समाचार मिला कि उन भाईने जगत्से ऊबकर आत्महत्या कर ली।

उन भाईकी यह बात सुनकर मेरे मनमें आया कि 'समाजका अधिकांश आज भोगविलासकी अँधेरी गुफासे बाहर निकलनेके बदले अधिक-से-अधिक नीचे गहराईमें उतरता जा रहा है।'। —जयन्तीलाल लवजी भाई पुजारा

(४)

देवीकी कृपा

सन् १९४२ के जूनकी बात है। उस वर्ष अन्य वर्षोंकी अपेक्षा काशीका तापमान अधिक था। प्रातःकाल ८ बजेसे ही 'लू' अपना प्रभाव दिखाने लग जाती थी। काशी-निवासी 'लू' की गरम हवाके झोंकोंसे परेशान थे। बहुत-से लोग तो

लूके कारण मृत्युके शिकार भी बन चुके थे। उस भयंकर गर्मीके समय मेरे ज्येष्ठ पुत्र नरेशको, जो उस समय दो वर्षका था, बुखार आने लगा। बुखारके कारण अब वह चिड़चिड़ा-सा रहने लगा। उसके स्वाभाविक मनोहारी 'हास्य' के स्थानको 'रुदन' ने ले लिया था। उसके लिये माता या गौका दूध भी पीना मुश्किल हो गया था। उसका शरीर दिनानुदिन जर्जरीभूत होने लगा। बालककी नन्ही-सी अवस्था और उसके तरुण क्लेशको देखकर मेरा चित्त डौंवाडोल और अशान्त रहने लगा।

मैं खिन्नमनस्क होकर काशीके सुप्रसिद्ध डाक्टर सत्येन्द्रनाथ मुकर्जीके पास रुग्ण बालकको लेकर गया। डाक्टर साहबने बालकको देखकर दवाकी व्यवस्था कर दी। कई दिनोंतक इलाज चलता रहा, परंतु लाभके बदले उत्तरोत्तर रोग बढ़ता ही गया। बालक अत्यधिक कमजोर होता जा रहा था। उसी समय बालकके दाहिने हाथमें एक फोड़ा भी हो गया। ज्वरकी वेदनासे तो बालक त्रस्त था ही, अब रही सही कमीकी पूर्ति फोड़ेने कर दी। अब बालक अधिक विचलित हो गया। बालककी स्थिति देखकर मेरी बुद्धि बेकाम हो गयी थी। मेरे मस्तिष्कमें बार-बार विभिन्न प्रकारके विचारोंके तूफान उठते थे और वे कुछ देर बाद स्वतः विलीन हो जाते थे। उस समय मुझे अपने शरीरतककी सुध न थी। मुझे किसीसे बोलना-चालना भी एक प्रकारका बोझ प्रतीत होता था, किसी भी काममें चित्त नहीं लगता था। खाना-पीनातक अव्यवस्थित हो गया था। निद्रा-देवी तो मानो उस समय मुझसे रूठकर कुछ दिनोंके लिये कहीं अन्यत्र चली गयी थीं।

एक दिन बालकको अकस्मात् रह-रहकर दस्त आने लगे। अधिक दस्त होनेके कारण बालककी अवस्था विशेष चिन्तनीय हो गयी। यहाँतक कि वह अपनी मातातकको पहचाननेमें असमर्थ हो गया और उसके श्वास आदिकी प्रक्रियाएँ भी अब विरूपतामें परिवर्तित हो गयीं। ऐसी स्थिति देखकर परिवारके सभी सदस्य घबरा गये। मैं 'मियाँकी दौड़ मस्जिदतक' के अनुसार पुनः डाक्टर मुकर्जीके यहाँ उन्हें बुलानेके लिये गया। डाक्टर साहब उस समय अपने रोगियोंसे घिरे होनेके कारण विशेष व्यस्त और व्यग्र थे। मुझे उस समय एक-एक क्षण पहाड़-सा प्रतीत हो रहा था। मैं होश-हवासमें न था। यह नहीं पता था कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, क्यों खड़ा हूँ और किससे बात कर रहा हूँ। किसी प्रकार अपने-आपको समझालकर मैंने डाक्टर साहबसे बालककी चिन्तनीय स्थिति सुनायी और तत्क्षण उन्हें

अपने घर चलनेके लिये कहा। डाक्टर साहब तुरंत मेरे साथ घर आ गये। बालकको देखकर उन्होंने कहा—“आप धनराय नहीं बच्चेको ‘टायफाइड’ है, शीघ्र ही ठीक हो जायगा।” डाक्टर साहबके ऐसा कहनेसे मुझे कुछ संतोष मिला। मैं बड़े धैर्य और विश्वासके साथ मनोयोगपूर्वक डाक्टर साहबकी दवा कर रहा था। परंतु दुर्भाग्यवश बालकको कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं हो रहा था। बालककी नाजुक स्थिति देखकर घरके सभी सदस्योंकी राय हुई कि अब किसी दूसरे डाक्टरका इलाज किया जाय। किंतु मैं घरवालोंके इस विचारसे विरुद्ध था। मेरी इस सम्बन्धमें सदासे यह धारणा रही है कि रोगीकी चिकित्सा अच्छे-से-अच्छे एक ही डाक्टरकी की जाय। हाँ, बीच-बीचमें अन्य डाक्टरोंका परामर्श भी ले लिया जाय। मैंने अपनी विचारधाराके अनुसार मुख्य चिकित्सक डा० मुकजीको ही रक्खा, किंतु विचार-विमर्शके लिये अन्य कई डाक्टरोंको भी बुलाया। सभी डाक्टरोंने डा० मुकजीकी दी जानेवाली दवाकी ही पुष्टि की। तदनुसार डा० मुकजीकी दवा निरन्तर चालू रही। परंतु बालककी हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती ही जा रही थी। अब सब लोगोंको विश्वास हो गया कि ‘यह बालक अब चंद घंटोंका ही मेहमान है।’ बालकके विषयमें सभी लोगोंकी यह धारणा देख मेरा रहा-सहा धैर्य टूटता जा रहा था। बालककी माताकी स्थिति तो अवर्णनीय थी। वह तो लगभग दो सप्ताहसे खाना-पीना और निद्रातकको भूल चुकी थी। मैं दवासे निराश हो गया। उसे बंदकर केवल भगवान् की शरण ली। भगवत्कृपासे अकस्मात् मुझे अपनी ‘कुल-देवी’ का स्मरण हो आया, जिनकी मान्यतासे हमारे परिवारका सर्वदासे कल्याण होता चला आ रहा है। इनका प्राचीन भव्य मन्दिर जि० रोहतक (पूर्वी पंजाब) के सुप्रसिद्ध कस्बा ‘बेरी’ में है। यह देवी अपने भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली मानी जाती हैं। इन देवीका विशाल मेला चैत्र और आश्विन—इन दोनों नवरात्रोंमें लगता है, जिनमें बम्बई, कलकत्ता आदि सुदूर स्थानोंसे बड़े-बड़े सेठ-साहूकार भी अधिक संख्यामें उपस्थित होते हैं।

इन्हीं देवीके धाममें जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनके समक्ष हमारे परिवारके सभी बालकोंके ‘मुण्डन-संस्कार’ करानेकी प्रथा हमारे वंशमें सदासे चली आ रही है। इस कुल समयसे हमलोगोंके यहाँ अपनी ‘कुलदेवी’ के यहाँ जाकर बालकोंका ‘मुण्डन-संस्कार’ करना बंद हो गया था। मैंने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे अपनी ‘कुलदेवी’ की शरण ली और मनौती मानी कि ‘मैं अपने बालकके अच्छा होनेपर अवश्य ही सपत्नीक बालकको आपके धाममें ले जाकर यथासमय इसका ‘मुण्डन-संस्कार’ करा दूँगा।’ साथ ही मैंने दूसरी मनौती प्रत्यक्ष-सिद्धिदात्री श्रीविन्ध्यवासिनी देवीकी, जो जि० मिर्जापुर (उ० प्र०) में हैं, मानी कि ‘बालकके अच्छा होनेपर बालकके सहित सपत्नीक आपके दर्शन करूँगा।’

इस प्रकार उपर्युक्त सद्यः सिद्धिको देनेवाली दोनों देवियों (मूर्तियों) की मनौती माननेके कुछ ही देर बाद एकाएक मैंने अपने बालकमें अद्भुत परिवर्तन देखा। वह अब कुछ-कुछ चैतन्यावस्थामें हो आया। शनैः-शनैः अपनी माताको पहचानने लगा तथा उसका दुग्ध-पान भी करने लगा। ज्वर कम हो गया और उसका फोड़ा भी फूट गया। अब वह विशेष प्रफुल्लित दीख पड़ा। बालकमें आश्चर्यजनक लाभको देखकर मेरे हर्षका ठिकाना न रहा। मैं अपनी ‘कुलदेवी’ और ‘श्रीविन्ध्यवासिनी देवी’ की अपूर्व चमत्कारपूर्ण दैवी शक्तिपर मुग्ध हो गया और मेरी उसी दिनसे इन दोनों देवियोंपर अटूट श्रद्धा हो गयी।

अब केवल बालककी कमजोरी शेष रह गयी थी। दोनों देवियोंके नामोच्चारणपूर्वक प्रसादरूपमें दिया हुआ जल एवं दुग्ध अब बालकके लिये अमृतरूपमें काम करने लगा, जिससे बालक चन्द्रकलाकी तरह दिनोंदिन स्वस्थताकी ओर प्रवृत्त हो गया, जिससे कुछ ही दिनोंमें वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। इस अद्भुत प्रत्यक्ष दैवी शक्तिको देखकर मेरा सर्वदाके लिये दृढ़ विश्वास हो गया है कि—“जो मनुष्य श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक देवी-देवताओंकी शरण स्वीकार करते हैं, वे अवश्य ही समस्त प्रकारके संकटोंसे मुक्त होकर आनन्दरूपी समुद्रमें गोते लगाते हैं।”

—वेणोराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

* देवीकी स्थापना तथा मन्दिर किसने कब बनवाया, इसका यथार्थ पता नहीं है। इनके सम्बन्धमें दो किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इन देवीकी स्थापना महर्षि दुर्वासाने की थी और कुछ लोगोंका कथन है कि इन देवीकी स्थापना पाण्डव-कुलभूषण भीमने की थी; इसीलिये इनका नाम ‘भीमादेवी’ पड़ा—

‘भीमादेवी’ की विख्यात तन्मे नाम भविष्यति।’ (दुर्गासप्तशती ११।५२)

इन देवीके सम्बन्धमें ‘कल्याण’ के विशेषाङ्क (शक्ति-अङ्क पृष्ठ ६८४) में भी लिखा गया है। विशेष जिज्ञासुओंको ‘कल्याण’ का ‘शक्ति-अङ्क’ पढ़ना चाहिये।

सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे विभूषित

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके पुस्तकाकार विभिन्न संस्करण

आर्डर देते समय कृपया स्पष्ट लिखिये कि आप कौन-सा संस्करण मँगाना चाहते हैं।

(१) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण (हिंदीभाषान्तरसहित)

[दो भागोंमें]

आकार २२×३० आठपेजी, पृष्ठ-संख्या १७२०, चित्र तिरंगे १२, इकरंगे ४८, कपड़ेकी जिल्द, दो जिल्दोंमें मूल्य १७.५० मात्र। डाकखर्च अलग।

प्रारम्भमें नम्र निवेदनके रूपमें एक उपयोगी भूमिका, पाठ-विधि और स्कन्दपुराणोक्त रामायण-माहात्म्य भी दिया गया है। बहुत समयसे जनताकी यह माँग थी कि गीताप्रेससे श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणको सानुवाद पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया जाय। इसके लिये अनेक प्रेमी सज्जन बारंबार आग्रह करते थे। भगवान् श्रीरामकी असीम अनुकम्पासे अब यह महान् कार्य पूर्ण हो सका है; अतः जिन्हें लेना हो, वे कृपापूर्वक शीघ्र मँगवा लें।

(२) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण (केवल भाषा)

आकार २२×३० आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ११००, चित्र बहुरंगे १२, इकरंगे ४८, पूरे कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ११.०० मात्र। डाकखर्च अलग।

हिंदीभाषाभाषी सज्जनोंके लिये श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका यह सम्पूर्ण भाषानुवाद श्लोकाङ्कसहित प्रकाशित किया गया है। इसके प्रारम्भमें भी नम्र निवेदनके रूपमें एक उपयोगी भूमिका, पाठविधि और रामायण-माहात्म्य दिया गया है।

(३) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सम्पूर्ण (केवल मूल)

आकार २२×३० आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ७४०, चित्र बहुरंगे ७, पूरे कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ७.५० मात्र। डाकखर्च अलग।

संस्कृत-भाषाविशेषोंके लिये इस ग्रन्थका केवल मूल संस्करण प्रकाशित किया गया है। पाठ-विधि और रामायण-माहात्म्य आदि इसमें भी दिये गये हैं।

(४) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल सुन्दरकाण्ड—मूलमात्र)

आकार २२×३० आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ९२, श्रीहनुमान्जीका सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ७.५०, सजिल्द २.५०। डाकखर्च अलग।

अधिकतर लोग सुन्दरकाण्डके पाठका अनुष्ठान करते हैं, अतः उनके लाभार्थ इस काण्डको अलग पुस्तकाकारमें प्रकाशित किया गया है और इसके आरम्भमें अनुष्ठान-विधि भी लगा दी गयी है। आशा है, जनता इससे लाभ उठायेगी।

पुस्तक-विक्रेताओंको सभी पुस्तकोंपर नियमानुसार कमीशन दी जाती है। अतः ग्राहकोंसे निवेदन है कि वे यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने पुस्तक-विक्रेताओंसे ही पुस्तकोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। इससे उनको भारी डाकखर्चकी बचत होगी।

सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

गीताभवन-ऋषिकेश-सत्सङ्गकी सूचना

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका विचार चैत्र सुदी (मार्च १९६१ के उत्तरार्द्ध) में गीताभवन पहुँचनेका है । सदाकी भाँति आपाढ़तक उनका वहाँ ठहरनेका विचार है ।

गीताभवन 'सत्सङ्ग'में जानेवालोंको पेश-आरामकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ कम-से-कम एक या दो समय सत्सङ्गमें अवश्य सम्मिलित रहना चाहिये ।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाना चाहिये । ऋषिकेशमें नौकर-रसोइया मिलना कठिन है । स्त्रियोंको ससुराल या पीहरका आदमी साथ लिये बिना अकेले नहीं जाना चाहिये । गहने आदि जोखिमकी चीज साथ नहीं रखनी चाहिये । बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेका प्रबन्ध कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण सत्सङ्गमें विघ्न होता है । खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जाता है, किंतु दूधका प्रबन्ध होना कठिन है ।

'कल्याण' नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

- १-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर
- २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक
- ३-मुद्रकका नाम—हनुमानप्रसाद पोद्दार
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ४-प्रकाशकका नाम—हनुमानप्रसाद पोद्दार
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

- ५-सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पोद्दार,
(२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी एम० ए०, शास्त्री
दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय
दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर
- ६-उन व्यक्तियोंके नाम—
पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं ।
श्रीगोविन्दभवनकार्यालय,
पता—नं० ३०, बाँसतल्ला
गली, कलकत्ता (सन् १८६०
के विधान २१ के अनुसार
रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था)

मैं, हनुमानप्रसाद पोद्दार, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं ।

हनुमानप्रसाद पोद्दार